सी बी टी प्रकाशन

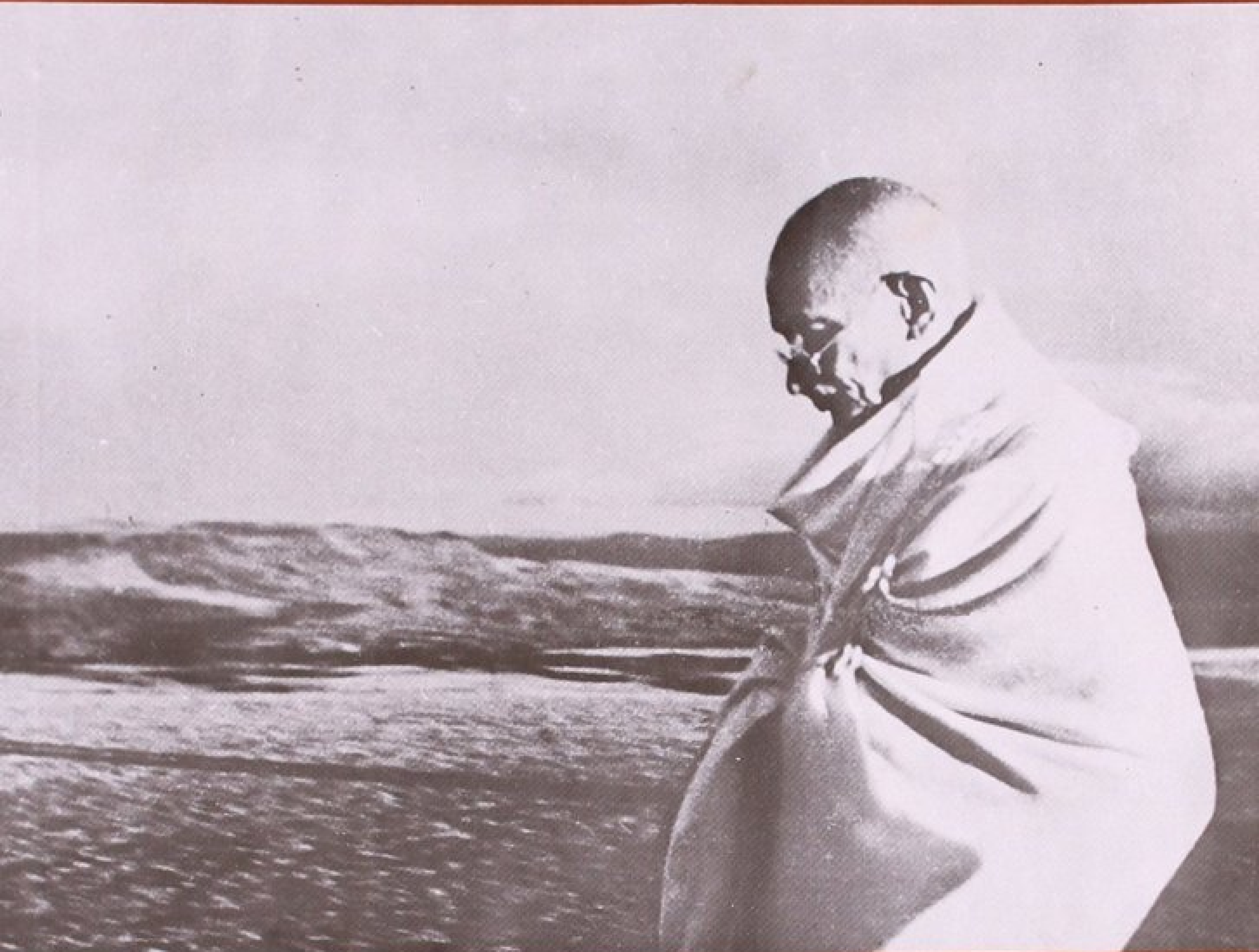

गाँधीजी की कहानी

गाँधीजीकी कहानी

लेखन : राजकुमारी शंकर

मैं उस परमात्मा के अलावा और किसी ईश्वर को नहीं जानता जो लाखों मूक प्राणियों के हृदय में बसता है...और मैं इन लाखों लोगों की सेवा के माध्यम से उस ईश्वर की पूजा करता हूं जो सत्य है.

- महात्मा गाँधी

चिल्ड्रन्स बुक ट्रस्ट,

नेहरू हाउस, 4 बहादुरशाह ज़फर मार्ग,

नई दिल्ली- 110002 द्वारा प्रकाशित

ई-मेल : cbtnd@cbtnd.com | वेबसाइट : www.childrensbooktrust.com

गाँधीजी : नेहरू के शब्दों में

और तब गाँधीजी आए। ...वह आसमान से नहीं उतरे थे, उनका उद्भव हम जैसे लाखों लोगों के बीच से ही हुआ था। वह हमारी ही भाषा में बात करते थे और हमारी भयावह दशा पर सबका ध्यान आकर्षित करते थे। उन्होंने कहा था, "तुम सब जो इन किसानों और मज़दूरों का शोषण कर रहे हो, अलग हट जाओ, उस व्यवस्था को बदल दो जो ऐसी गरीबी और दुख को जन्म दे रही है।" तब राजनीतिक स्वतंत्रता को नया रूप मिला और उसमें नया आशय खोजा गया। उन्होंने जो कुछ कहा उसको हमने आंशिक रूप में ही स्वीकार किया है। कई बार तो उनकी बात का हमने बिलकुल पालन नहीं किया। लेकिन यह सब कम महत्त्व की बात है। उनकी शिक्षा का सार तत्त्व है 'अभय' और 'सत्य' तथा हमेशा जन-कल्याण पर दृष्टि रखते कर्म में इन दोनों का संयोग। हमारे प्राचीन ग्रंथों में 'अभय' की बात कही गई है। यह निर्भयता केवल शारीरिक साहस की ही नहीं है, इसमें मस्तिष्क से भी भय का निर्मूल होना ज़रूरी है।

हमारे इतिहास के उदयकाल में जनक और याज्ञवल्क्य ने कहा है, "यह देश के नेताओं का काम है कि वे लोगों को निर्भय बनाएं।" लेकिन ब्रिटिश काल में भारत की भावना डर से जकड़ी हुई थी – दमन, शोषण और दमघोंट भय से। भय था सेना का, पुलिस का, सारे देश में फैले गुप्तचर दल का। सब डरते थे अफसर वर्ग से, दमन और जेलखाने के कानूनों से। तब ज़मींदार के नुमाइंदे का डर था, ऋणदाता का डर था और डर था भुखमरी और बेकारी का। ये सब भय हमारी ड्योढ़ी पर खड़े हुए थे। इस सर्वत्र फैले भय के विरुद्ध ही गाँधीजी ने अपनी शांत किंतु सुदृढ़ आवाज़ बुलंद की थी: निर्भय बनो। क्या निर्भय होना इतना सहज संभव है ? कदापि नहीं। फिर भी जहां भय होता है वहां एक तरह की प्रेतबाधा पैदा हो जाती है जो हकीकत से कई गुना डरावनी होती है। लेकिन जब शांतिपूर्वक यथार्थ का विश्लेषण किया जाता है और उसके परिणामों को जब स्वेच्छा से स्वीकार कर लिया जाता है तो उसकी भयंकरता समाप्त हो जाती है।

इसलिए यह लगता है कि यह अचानक ही हुआ था कि जनता के कंधों पर से भय की काली छांह हटा दी गई। पूरी तरह तो नहीं लेकिन अधिकांश भय चला गया था।

- जवाहरलाल नेहरू

('दि डिस्कवरी ऑफ इंडिया' से)

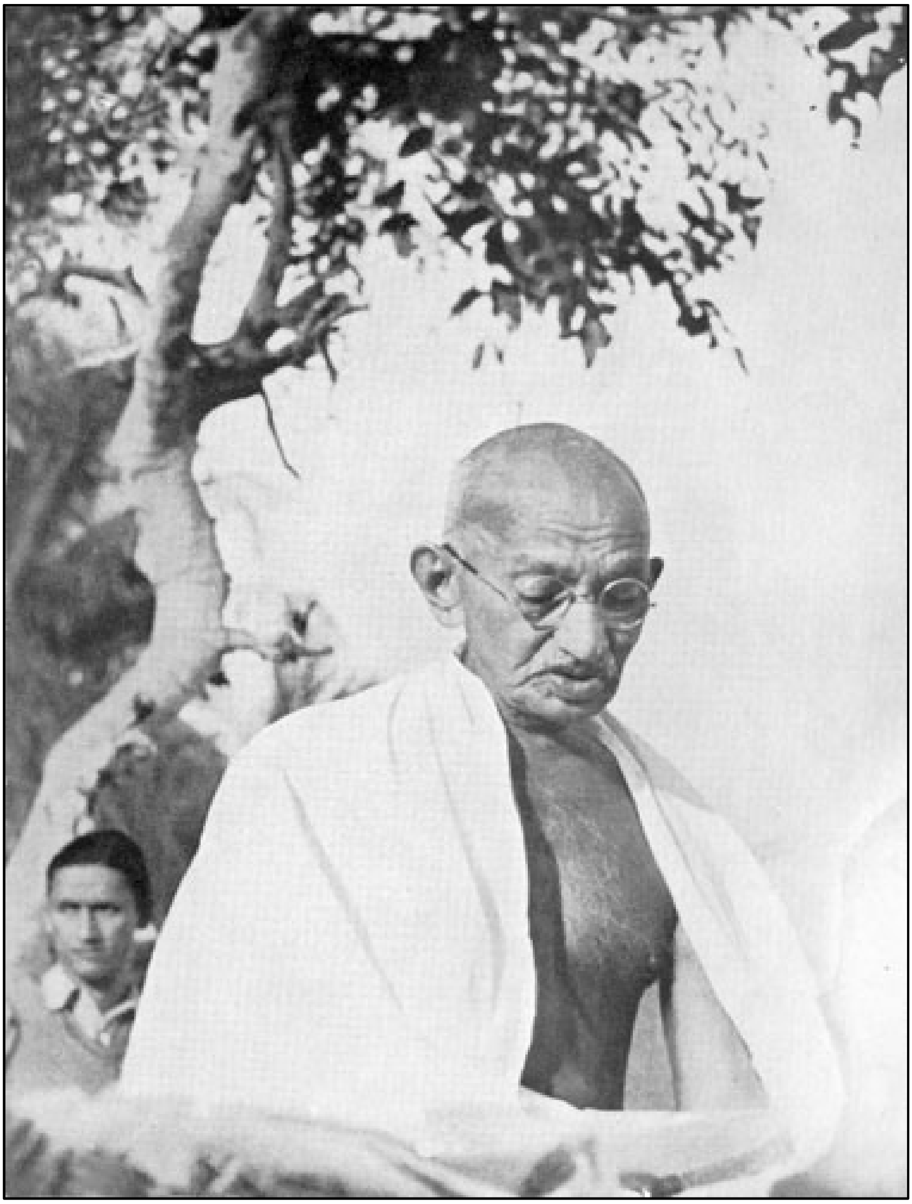

1

मोहनदास गाँधी का जन्म 2 अक्तूबर 1869 को पोरबंदर के एक छोटे से साफ-सुथरे घर में हुआ था। पोरबंदर पश्चिम भारत में काठियावाड़ के तट पर स्थित है। उनके पिता का नाम करमचंद गाँधी और माता का नाम पुतलीबाई था। मोहनदास का कद छोटा और रंग सांवला था। वे भारत में जन्म लेने वाले लाखों बच्चों की तरह दिखाई देते थे, लेकिन वे साधारण बालक नहीं थे। उन्होंने एक बड़े साम्राज्य से लोहा लिया और शस्त्रों का सहारा लिए बगैर अपने देश को आज़ाद कराया। अपनी पवित्र आत्मा और सिद्धांतों के कारण वे 'महात्मा' कहलाए। उन्होंने न केवल भारत को आज़ादी दिलाई, बल्कि दुनिया को सत्य-अहिंसा का पाठ भी सिखाया।

राजकोट के घर का प्रवेश द्वार

पोरबंदर एक प्राचीन बंदरगाह है, जो सुदूर वरदा पहाड़ी से दिखाई देता है। उस काल में भी व्यापार के लिए यहां दूर-दूर से जहाज़ आया करते थे। यहां गाँधी परिवार का पुश्तैनी मकान था। मोहनदास के पिता और दादा अपनी योग्यता और अपने उच्च नैतिक चरित्र के लिए विख्यात थे।

दादा उत्तमचंद गाँधी एक बनिया थे, लेकिन वे पोरबंदर के दीवान बन गए। फिर उनका उत्तराधिकार मिला उनके पुत्र करमचंद गाँधी को। करमचंद कबा गाँधी के नाम से भी जाने जाते थे। साधारण शिक्षा प्राप्त कबा गाँधी अपने ज्ञान और अनुभव से एक प्रशासनिक अधिकारी बन गए। वह उदार मन के थे। यदि उनमें कोई बुराई थी तो वह था उनका गर्म मिजाज़।

करमचंद गाँधी की पत्नी पुतलीबाई बड़ी धर्मपरायण थीं। प्रतिदिन मंदिर जाकर पूजा करना उनको दिनचर्या का अभिन्न हिस्सा था। वह दृढ़ इच्छा शक्ति वाली महिला थीं। लोग उनकी

बुद्धि और सद्भावना का आदर करते और ज़रूरत पड़ने पर उनकी सलाह भी लिया करते थे।

कबा गाँधी के छह बच्चे थे और मोहनदास उनमें सबसे छोटे थे। वह परिवार के लाड़ले बेटे थे। माता-पिता और उनके मित्र उन्हें 'मोनिया' के नाम से पुकारते थे। मोनिया अपनी मां को बहुत प्यार करता था। प्यार पिता को भी करता था, लेकिन उनसे थोड़ा डरता था।

सात वर्ष का मोनिया

बालक मोनिया को घर में रहना बिलकुल अच्छा नहीं लगता था। खाना खाते ही वह भाग खड़ा होता और बाहर जाकर अपने खेल में लग जाता। अगर खेलते-खेलते उसे किसी भाई ने चिढ़ा दिया या फिर उसके कान खींच लिए तो वह दौड़कर घर जाता और मां से उसकी शिकायत करता।

“तो तुम भी उन्हें क्यों नहीं पीट देते?” मां शिकायत सुनकर मोनिया से कहतीं।

“तुम मुझे उन्हें पीट देने की बात कैसे सिखा सकती हो मां? मैं अपने भाइयों को क्यों मारूंगा ? और भाइयों को ही क्यों, किसी और को भी क्यों पीटूंगा ?”

मां बड़े ही अचरज से कहतीं कि उनके नन्हें से बेटे के मन में इतने अच्छे विचार कहां से आए।

मोनिया की उम्र सात साल थी, जब उसके पिता की नियुक्ति राजकोट के दीवान के रूप में हो गई। परिवार को पोरबंदर छोड़ना पड़ा। मोनिया को वहां का नीला आकाश, बंदरगाह और आते-जाते जहाज़ खूब याद आते थे।

राजकोट में उसे प्राथमिक पाठशाला में भेजा गया। वह स्वभाव से काफी शरमीला था और इसी वजह से दूसरे बच्चों के साथ आसानी से घुल-मिल नहीं पाता था। वह समय पर स्कूल जाता और छुट्टी होते ही घर भाग आता। उसकी मित्रता केवल किताबों से ही थी।

उका मोनिया का इकलौता दोस्त था। वह एक हरिजन बालक था। उस समय हमारा देश छुआछूत जैसी सामाजिक कुरीतियों को झेल रहा था। हरिजनों को लोग अछूत मानते थे।

एक दिन मोनिया को मिठाई मिली। वह उका के पास दौड़ा-दौड़ा गया कि वे दोनों उसे बांटकर खा लें।

उका बोला, "छोटे मालिक, मेरे पास मत आओ।"

"क्यों?" मोनिया ने आश्चर्य से पूछा, "मैं क्यों नहीं आऊं तुम्हारे पास?"

उका ने जवाब दिया, " क्योंकि मैं अछूत हूं छोटे मालिक।"

मोनिया ने उका का हाथ पकड़ा और उस पर मिठाई रख दी।

पुतलीबाई ने खिड़की से यह सब देख लिया। उन्होंने मोनिया को तुरंत अंदर आने का आदेश दिया और कठोर स्वर में पूछा, "क्या तुम जानते नहीं हो कि उच्च कुल के लोग अछूतों को हाथ नहीं लगाते ?"

"लेकिन मां, क्यों नहीं लगाते?" मोनिया ने पूछा।

"क्योंकि हमारी मान्यताओं में ऐसा करने की मनाही है," मां ने उत्तर दिया।

"मैं तुम्हारी बात से सहमत नहीं हूं मां! मुझे उका को छू लेने में कुछ भी गलत नहीं लगा। वह मुझ जैसा ही तो है, मुझसे जुदा तो है नहीं, बोलो न ?"

मां के पास कोई जवाब न था। लेकिन उन्होंने गुस्से में यही कहा कि वह जाकर नहाए और फिर प्रार्थना करे।

करमचंद गाँधी अपने सभी पुत्रों को प्यार करते थे, लेकिन मोनिया से उन्हें ज़्यादा लगाव था। वह अक्सर कहा करते, "बेटे, तुम हाई स्कूल और कॉलेज तक खूब पढ़ना और फिर कोई बड़ा व्यवसाय करना।"

मोनिया खूब मेहनत से पढ़ाई करता, लेकिन उसे किसी पाठ को याद करना पसंद नहीं था। इसी वजह से वह संस्कृत में कमज़ोर भी था। भूमिति उसका प्रिय विषय था क्योंकि उसमें हर बात तर्क से सिद्ध होती थी।

एक बार मोनिया ने श्रवण कुमार की कहानी पढ़ी। श्रवण के माता-पिता वृद्ध और नेत्रहीन थे। वह उन्हें हमेशा कंधे पर कावड़ लटकाकर लाता-ले जाता था और हर समय उनकी सेवा में लगा रहता था। माता-पिता के प्रति श्रवण की इस भक्ति ने मोनिया को बहुत प्रभावित किया।

मोनिया ने प्रतिज्ञा की, "मैं श्रवण कुमार जैसा ही बनूंगा।"

उन्हीं दिनों मोनिया ने राजा हरिश्चंद्र पप आधारित एक नाटक देखा। हरिश्चंद्र अपनी सत्यप्रियता के लिए विख्यात थे। मोनिया स्वयं से बार-बार पूछने लगा, "क्यों न हम सभी हरिश्चंद्र की तरह सत्यवादी बनें ?"

मोहनदास की उम्र केवल तेरह वर्ष की थी जब उससे कहा गया कि शीघ्र ही उसकी शादी होने वाली है। माता-पिता उसके लिए वधू खोज चुके थे। वह पोरबंदर की रहनेवाली थी और उसका नाम था कस्तूरबाई। वह और मोहनदास लगभग एक ही उम्र के थे।

विवाह का दिन आ गया। मोहनदास ने नए कपड़े पहने। सभी लोग ठाठदार कपड़ों में सजे थे। घर को फूल और केले के पत्तों से सजाया गया और दूल्हे को साथ लेकर बारात पोरबंदर के लिए रवाना हुई।

वधू के घर बड़ी धूमधाम थी। नृत्य-संगीत की बहार थी। मुहूर्त का समय आया और वर को लेकर बारात वहां पहुंची। कस्तूरबाई लाल वस्त्र और जड़ाऊ आभूषण पहने हुए थीं। उस

वेशभूषा में वह शरमा रही थीं और बहुत आकर्षक लग रही थीं। खूब धूमधाम के साथ विवाह संपन्न हो गया।

पूरे एक सप्ताह तक रस्म-रिवाज़ चलते रहे। फिर दुलहन पिता का घर छोड़कर पति के साथ राजकोट आ गई।

कस्तूरबाई देखने में बहुत सुंदर और प्राणवान लगती थीं। मोहनदास और वह अक्सर साथ-साथ खेला करते थे। कभी-कभी मोहनदास अपनी पत्नी को पढ़ाने की कोशिश भी करते, लेकिन पढ़ने में कभी उनका मन नहीं लगा, जबकि घर के काम-काज वह बड़ी तत्परता से सीख लेती थीं।

एक दिन मोहनदास शेख मेहताब से मिले। वह उनके बड़े भाई का मित्र था। मोहनदास यह जानते थे कि शेख बदनाम है, लेकिन उसकी लंबी काया और मज़बूत डील-डौल से वह प्रभावित हुए बगैर नहीं रह सके। शेख मांसाहारी था और वह अक्सर मोहनदास से कहा करता कि अगर वह भी मांस खाएंगे तो कद से लंबे और शरीर से बलिष्ठ हो जाएंगे।

उन दिनों सुधार आंदोलन भी ज़ोरों पर था और पुरातन पंथी जीवन पद्धति में परिवर्तन लाने की कोशिशें भी चल रही थीं। मोहनदास ने खुद सुना था कि कई संपन्न परिवारों के लोग मांस खाने लगे हैं, सो उन्होंने भी मांस खाना शुरू कर दिया। प्रारंभ में उन्हें मांस का स्वाद नहीं भाया, लेकिन कुछ समय बाद वे इसे पसंद करने लगे |

जब भी मोहनदास बाहर से मांस खाकर आते थे, तो वह घर पर भोजन नहीं कर पाते थे और उन्हें मां से कोई-न-कोई बहाना बनाना पड़ता था। वह अच्छी तरह जानते थे कि उनके माता-पिता मांस खाने की बात को कभी क्षमा नहीं करेंगे। मोहनदास मांस खाने के नहीं, बल्कि मां से झूठ बोलने के विरोधी थे। यह भावना उन्हें अंदर-ही-अंदर कुरेदती रहती। आखिरकार एक दिन उन्होंने यह तय कर लिया कि वह कभी मांस नहीं छुएंगे।

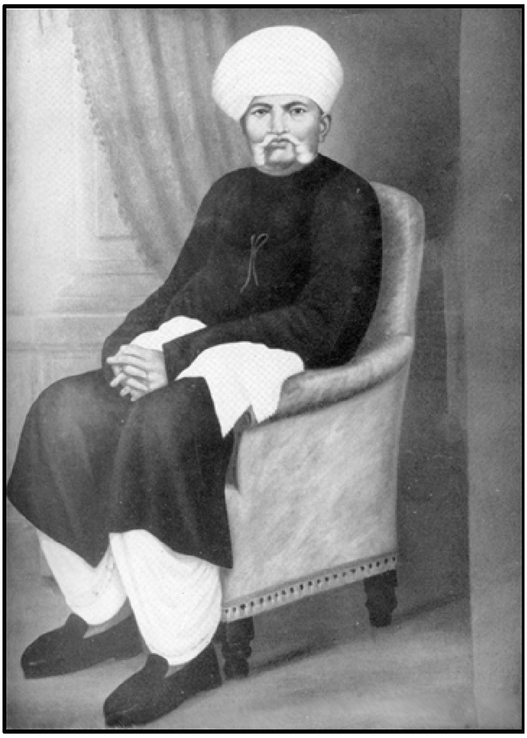
पिता करमचंद गांधी

मोहनदास ने अपने भाई, शेख और एक दूसरे रिश्तेदार की संगत में धूम्रपान भी सीख लिया था। उन लोगों को सिगरेट खरीदने के लिए थोड़ा-बहुत रुपया भी उधार लेना पड़ता था। इस तरह उनके भाई पर कर्ज हो गया। उसे चुकाने के लिए मोहनदास ने भाई के सोने के कड़े से एक तोला सोना काटकर बेच दिया। यह सब उन्होंने चोरी से किया। चोरी करना बड़ा पाप माना जाता है। वह जानते थे कि उनसे भारी अपराध हो गया है। यह सोचकर उन्होंने प्रतिज्ञा ली कि वह कभी चोरी नहीं करेंगे | मोहनदास ने अपने अपराध की आत्म-स्वीकृति एक कागज़ पर लिखी और वह कागज़ अपने बीमार पिता के हाथ में थमा दिया।

करमचंद गाँधी ने बेटे की आत्म-स्वीकृति को पढ़ा। एक भी शब्द कहे बिना उन्होंने वह कागज़ फाड़ डाला। उनकी आंखों से दो बूंद आंसू टपके। दीर्घ निश्वास लेकर वह फिर से बिस्तर पर लेट गए। मोहनदास कमरे से बाहर आ गए। उनका चेहरा आंसुओं से तर था।

उस दिन से मोहनदास अपने पिता को और अधिक प्यार करने लगे। रोज़ वह स्कूल से सीधे घर आते और पिता की सेवा करते, लेकिन पिता की दशा बिगड़ती चली गई और अंत में उनकी मृत्यु हो गई। घर में मातम छा गया। मोहनदास उस समय केवल सोलह वर्ष के थे।

2

हाई स्कूल की परीक्षा पास कर लेने के बाद मोहनदास भावनगर के शामलदास कॉलेज में भर्ती हो गए। वह पहले सत्र के बाद ही घर लौट आए क्योंकि वहां की पढ़ाई उन्हें पसंद नहीं आई।

घर लौटे तो एक आश्चर्यजनक प्रस्ताव उनके सामने रखा गया। बड़े भाई और परिवार के एक मित्र का सुझाव था कि वह आगे पढ़ने के लिए इंग्लैंड जाएं और बैरिस्टर बनें। मोहनदास रोमांचित हो गए। दुनिया देखने का एक सुंदर अवसर उनके सामने था।

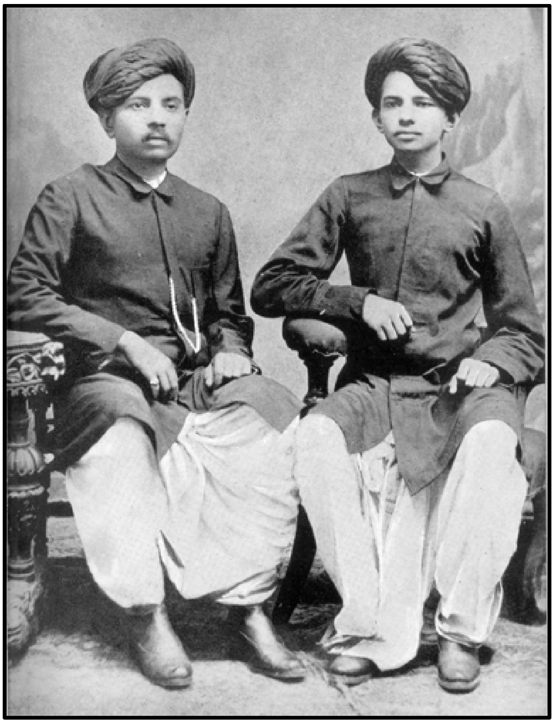

बड़े भाई लक्ष्मीदास गांधी के साथ, १८८६

परंतु मां को इंग्लैंड जाने की बात पसंद नहीं आई। वह नहीं चाहती थीं कि उनका बेटा उनसे दूर रहे। समस्या रुपयों की भी थी, पर सबसे अधिक उन्हें डर यह था कि समंदर पार जाकर वह अपना जाति-धर्म खो बैठेगा। परिवार के मित्रों ने सुझाया कि डर की कोई आशंका नहीं है और धन की समस्या भी नहीं आएगी, लेकिन फिर भी मां विरोध करती रहीं। "मैं ऐसी कई बातें जानती हूं जिनके कारण किसी भी हिन्दू को भारत छोड़कर बाहर नहीं जाना चाहिए," मां ने समझाया, "वहां मांस खाना पड़ेगा। वहां के लोग बहुत शराब पीते हैं। तुम्हारी भी इच्छा होगी कि तुम भी पियो। यह भी हो सकता है कि तुम बुरी सोहबत में पड़ जाओ। वहां बुरी आदतों की कमी नहीं है। वे तुम्हें बिगाड़ देंगे।"

मोहनदास ने कहा, "नहीं मां, मैं कोई बच्चा तो हूं नहीं। मैं अपनी देखभाल कर सकता हूं।"

वह मां से जाने की आज्ञा पाने के लिए जिरह करते रहे और आखिर में उन्होंने अपनी मां के सामने शपथ ली कि इंग्लैंड जाकर वे कभी मांस नहीं खाएंगे, शराब नहीं पीएंगे और किसी नारी से संबंध नहीं बनाएंगे।

हारकर पुतलीबाई ने मोहनदास को इंग्लैंड जाने की आज्ञा दे दी। जब वह राजकोट छोड़कर बंबई (अब मुंबई) जाने के लिए रवाना हुए तो वह दुखी हो उठे। वह मां, पत्नी और अपने नन्हें से पुत्र को छोड़कर जा रहे थे वह कुछ ही महीने का था।

मोहनदास 4 सितंबर 1888 को बंबई से इंग्लैंड के लिए रवाना हुए। जब जहाज़ तट से धीरे-धीरे आगे बढ़ा तो वह पश्चिमी वेशभूषा में डेक पर खड़े हुए थे। वह उदास थे, लेकिन साथ ही उत्तेजित भी।

मोहनदास जहाज़ पर अपनी पहली सुबह कभी नहीं भूल सके। वह काला सूट और सफेद शर्ट पहने हुए थे। उनका कालर सख्त था और उन्होंने टाई लगा रखी थी। उसमें वह बड़ी असुविधा अनुभव कर रहे थे। कालर उन्हें चुभ रहा था। ठीक से टाई बांधना भी कोई छोटा काम तो था नहीं। चुस्त शार्ट कोट में भी खासी परेशानी हो रही थी। उन्होंने सोचा कि भारतीय पोशाक ही आरामदेह होती है, लेकिन आईने में चेहरा देखने पर उन्हें गर्व ही महसूस हुआ। उन्हें लगा, वह बहुत प्रभावशाली दिख रहे हैं।

मोहनदास थे शरमीले स्वभाव के। वह मुश्किल से कभी केबिन छोड़कर बाहर गए होंगे। वह अपना खाना भी अकेले ही खाते थे। उन्हें विश्वास नहीं था कि जहाज़ पर जो खाना दिया जाता है उसमें क्या होता है। हो सकता है उसमें मांस ही हो। वह नहीं चाहते थे कि मां को दिया वचन किसी भी तरह टूटे। इसीलिए अधिकतर वह अपने साथ लाई मिठाई को खाकर ही गुज़ारा करते थे।

3

इंग्लैंड के साउदेम्प्टन पहुंचने पर उन्होंने अपने आस-पास नज़र दौड़ाई। देखा कि सभी लोग गहरे रंग के कपड़े पहने हुए हैं, उन्होंने अपने सिर पर कटोरीनुमा टोप लगा रखी है और वे हाथ में ओवरकोट लटकाए हुए हैं। मोहनदास को यह देखकर बड़ा संकोच हुआ कि अकेले वही सफेद फलालैन का कोट पहने थे।

लंदन में मोहनदास विक्टोरिया होटल में ठहरे। सबसे पहले गाँधी परिवार के हितैषी डाक्टर पी.जे. मेहता उनसे मिलने आए। मोहनदास डाक्टर मेहता के रेशमी टोप से बहुत प्रभावित हुए | उन्होंने कौतूहलवश टोप को छूकर देखा। छूने से उसके रेशमी फीते बिखर गए। तत डाक्टर मेहता ने मोहनदास को यूरोपियन आचार-व्यवहार के बारे में समझाया।

“दूसरों की चीज़ों को मत छूना,” उन्होंने कहा, “जब किसी से पहली बार मिलो तो सवाल मत पूछना जैसे कि हम लोग भारत में पूछने लग जाते हैं। ज़ोर से मत बोलना। दूसरों से बात करते समय 'सर' का उपयोग मत करना। केवल नौकर और अधीन काम करने वाले लोग ही अपने मालिक से बात करते समय 'सर' शब्द का इस्तेमाल करते हैं।"

युवा गाँधी को आस-पास का सारा वातावरण अजीब लग रहा था। उन्हें घर की याद आने लगी। वहां एक शाकाहारी भोजनालय खोज लेने तक वह लगभग भूखे ही रहे। वह पश्चिमी आचार-व्यवहार सीखने के लिए संघर्ष कर रहे थे। उन्होंने दो कमरों का एक मकान किराये पर ले लिया। बढ़िया सिलाई वाले कपड़े खरीदे। एक टोप खरीदा। आईने के सामने खड़े होकर बालों में मांग निकालने और टाई की नाट बांधने में उनका बड़ा समय लग जाता था। उन्होंने नाच भी सीखा, लेकिन जल्दी ही इसे छोड़ दिया क्योंकि उन्हें लय का ज्ञान नहीं था। वायलिन सीखा, पर असफल रहे। फ्रेंच भाषा और वक्तृत्व कला सीखने की कोशिश की, लेकिन उससे नींद आने लगी।

अंग्रेज़ बनने की मोहनदास की यह कोशिश करीब तीन महीने चली। फिर उन्होंने यह विचार ही छोड़ दिया और एक गंभीर विद्यार्थी बन गए।

एक मित्र से उन्होंने कहा, "मैंने अपनी जीवन पद्धति बदल ली है। अब मैं इस मूर्खता से मुक्त हो गया हूं। एक कमरे में रहता हूं और अपना खाना मैं खुद पकाता हूं। अब मैं अपना सारा समय केवल पढ़ने में ही लगाऊंगा।"

उनका खाना बहुत सादा होता था। आने-जाने पर खर्च करना भी उन्होंने बंद कर दिया। वह लंदन में हर जगह पैदल ही आते-जाते थे। खर्च किए एक-एक पैसे का हिसाब रखते थे।|

मोहनदास ने 'लंदन शाकाहारी संस्था' में प्रवेश ले लिया और शीघ्र ही वह उसकी कार्यकारी समिति में आ गए। उन्होंने 'वेजीटेरियन' (शाकाहारी) पत्रिका के लिए लेख भी लिखे।

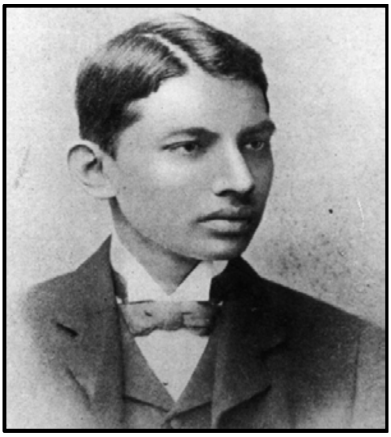
लंदन में कानून के छात्र के रूप में, १८९०

कानून की परीक्षा के लिए बहुत अधिक अध्ययन की ज़रूरत नहीं होती थी और पढ़ाई के बाद गाँधीजी के पास बहुत-सा समय बचा रहता था। ऑक्सफोर्ड या कैम्ब्रिज का सवाल ही नहीं उठता था क्योंकि उसका पाठ्यक्रम बहुत लंबा था, खर्च भी अधिक था। तब उन्होंने लंदन की मैट्रिक परीक्षा में बैठने का निर्णय लिया। यह कठिन काम था, लेकिन उन्हें तो कठिन काम पसंद थे। फ्रेंच, इंग्लिश और रसायन शास्त्र में तो वह पास हो गए, लेकिन लैटिन में फैल हो गए। उन्होंने दुबारा कोशिश की और अब वे लैटिन में भी पास हो गए। साथ-ही-साथ वह कानून भी पढ़ते रहे और नवंबर 1888 में उन्हें इनर टेम्पल में जगह मिल गई। वहां न्याय संस्थान (इन्स ऑफ कोर्टस्) का यह नियम था कि उसके छात्र वर्ष में कम-से-कम छह बार एक साथ भोजन करें। जब पहली बार वह अपने विद्यार्थी साथियों के साथ भोजन करने गए तो संकोच करते रहे। उनका विश्वास था कि मांस और शराब के लिए इंकार करने पर दूसरे विद्यार्थी उनका मज़ाक उड़ाए बगैर नहीं रहेंगे ।

जब शराब दी गई तो वह बोले, “नहीं, धन्यवाद।”

पास बैठे लड़के ने कहा, “गाँधी, क्या तुम सचमुच अपने हिस्से की शराब नहीं लोगे ? तुम्हें मालूम होगा कि इसके लिए तुम पैसे चुकाते हो ?”

जब गाँधीजी ने कहा कि उन्होंने शराब को कभी छुआ तक नहीं, तो लड़का अपने दोस्तों से बोला, “दोस्तो, ईश्वर की कृपा से हम बड़े भाग्यवान हैं कि यह लड़का हमारे पास बैठा है। और इसी के कारण हमें आधी बोतल शराब और पीने को मिल रही है।”

गाँधीजी ने कहा, “तुम मेरे हिस्से का भुना हुआ मांस भी ले सकते हो।”

प्लेट उसकी तरफ करते हुए गाँधीजी अपने हिस्से की रोटी, उबले हुए आलू और गोभी की सब्जी खाकर संतुष्ट हो गए। उन्हें इस बात से प्रसन्नता हुई कि उनकी विलक्षण आदतों के बाद भी लोग उन्हें चाहते थे।

अगली बार जब वह खाना खाने गए, तो उनके हाथ में कानून की किताबों का ढेर था। वह उन्हें पढ़ने के लिए घर ले जा रहे थे।

“गाँधी,” एक विद्यार्थी ने पूछा, “क्या सचमुच इन पोथों को तुम पढ़ोगे?”

यह कहकर उसने एक किताब झपट ली।

फिर वह बोला, “देखो दोस्तो, यह तो वाकई लैटिन भाषा में रोम का कानून पढ़ने जा रहा है।”

सारे दोस्त हँसने लगे। उनमें से एक ने कहा, “मेरी बात सुनो गाँधी, मैंने रोमन कानून की परीक्षा केवल दो सप्ताह में एक छपी हुई कुंजी पढ़कर पास की है। तुम क्यों बेकार मेहनत कर रहे हो?”

गाँधीजी ने उस व्यंग्य कसने वाले मित्र को बताया कि वह उस विषय में रुचि रखते हैं और इसी वजह से इतनी मेहनत कर रहे हैं। वह ज्ञानार्जन के लिए अध्ययन करना चाहते हैं।

फिर थोड़े समय के लिए गाँधीजी फ्रांस गए. और कानून की आखिरी परीक्षा की तैयारी में जुट गए। जल्दी ही नतीजा भी घोषित हो गया। गाँधीजी अच्छे अंक प्राप्त करके पास हुए थे। 10 जून 1891 को वह बैरिस्टर बन गए और उन्हें उच्च न्यायालय में औपचारिक प्रवेश भी मिल गया। 12 जून को वह भारत लौटने के लिए जहाज़ पर सवार हुए।

गाँधीजी का इंग्लैंड में तीन वर्ष ठहरना घटनापूर्ण रहा। वे दिन थे बौद्धिक जागरण के और उन दिनों हर तरह के मत-मतांतर को सम्मान दिया जाता था। सारा देश ही एक तरह से प्राणवान विश्वविद्यालय बन गया था। गाँधीजी जब समुद्री जहाज़ एस.एस.आसाम से लौट रहे थे तो यह विचार उनके मन में था कि भारत को छोड़कर अगर उन्हें कहीं और रहना पड़ा तो वह इंग्लैंड को ही पसंद करेंगे।

4

जहाज़ बंबई के तट पर पहुंच गया | मोहनदास ने देखा, उनके भाई मुख्य रास्ते से दूर मालगोदाम वाले रास्ते पर खड़े हैं | वह उनसे मिलने के लिए छोटे पुल पर से दौड़े जो यात्रियों के उतरने के लिए बना था। अभिवादन के साथ ही उन्हें लगा कि उनके भाई उदास हैं।

गाँधीजी ने पूछा, "कोई बुरी खबर है क्या?"

"हां," भाई की आंखों में आंसू भर आए, "परीक्षा के समय हम तुम्हें परेशान नहीं करना चाहते थे। मां... कुछ सप्ताह पहले चल बसीं।"

मोहनदास अवाक् रह गए। मां उनके लिए बड़ा महत्त्व रखती थीं। वह तो लौटकर यह कहने आए थे कि विदेश जाने से पहले उन्होंने जो शपथ ली थी, उसका उन्होंने ठीक-ठीक पालन किया है, लेकिन मां तो हैं हो नहीं... | कैसी उदास वापसी थी यह।

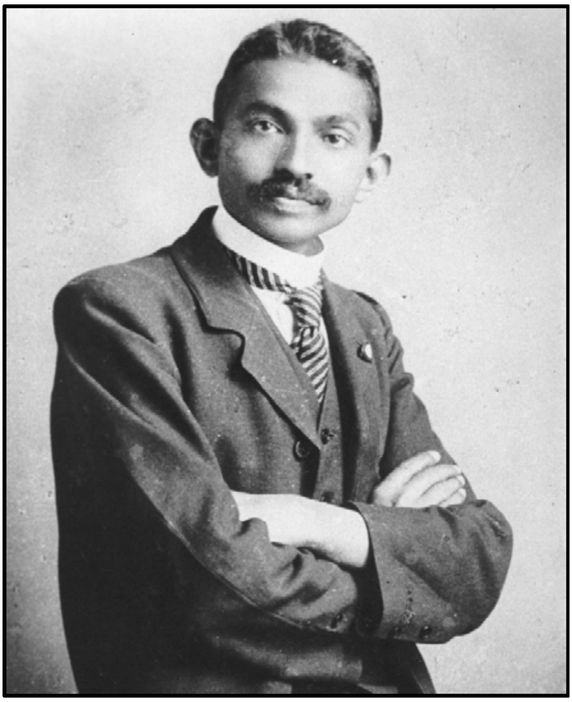

जोहान्सबर्ग में बैरिस्टर के रूप में, १९००

राजकोट में मोहनदास ने वकालत शुए की। लेकिन वकीलों में उन्होंने देखा – स्वार्थ और संकीर्ण मनोवृत्ति | वे जल्दी ही उकता गए। उन्होंने अनुभव किया कि गरीब आदमी के लिए न्याय पाना आसान नहीं है। वह राजकोट के जीवन से खुश नहीं थे और चाहते थे कि वहां से कहीं चले जाएं।

उन्हीं दिनों मोहनदास को दादा अब्दुल्ला एंड कंपनी की ओर से दक्षिण अफ्रीका जाने का निमत्रंण मिला। कंपनी

का वहां बड़ा व्यापार फैला था। एक अन्य कंपनी पर इन्होंने चार लाख डालर का मुकदमा दायर कर रखा था। उनका प्रस्ताव था कि गाँधीजी यह मुकदमा ले लें क्योंकि वह अंग्रेज़ी अच्छी बोल लेते हैं और विदेशी कानून की उन्हें जानकारी भी है। मुकदमे के अलावा उन्होंने अपनी फर्म के अंग्रेज़ी पत्र-व्यवहार का काम-काज भी गाँधीजी को सौंप देना चाहा। वहां एक वर्ष के लिए उनकी ज़रूरत थी। कंपनी ने अच्छी फीस और आने-जाने का प्रथम श्रेणी का किराया देना भी मंजूर कर लिया | नया देश और नए लोगों को देखने का अवसर एक बार फिर सामने था | गाँधीजी रोमांचित हो उठे और उन्होंने निमंत्रण स्वीकार कर लिया, लेकिन इस बात का उन्हें बहुत दुख हुआ कि इतनी जल्दी वे कस्तूरबाई से अलग हो रहे थे। उनके जाने का कार्यक्रम तय हो चुका था। अप्रैल 1893 में गाँधीजी बंबई से दक्षिण अफ्रीका के लिए रवाना हुए।

5

भारत से दक्षिण अफ्रीका की यात्रा बड़ी लंबी थी। सन् 1893 के मई महीने के अंत में गाँधीजी नेटाल पहुंचे। पहली बात जो उन्होंने देखी वह यह थी कि वहां भारतीय लोगों का बहुत कम सम्मान किया जाता था।

डरबन पहुंचने के कोई एक सप्ताह के अंदर ही वह दादा अब्दुल्ला एंड कंपनी के अब्दुल्ला सेठ के साथ न्यायालय में गए। वह अभी न्यायालय में बैठे ही होंगे कि न्यायाधीश ने उनकी तरफ अंगुली उठाई और कठोर आवाज़ में कहा, "अपनी पगड़ी उतारो।"

गाँधीजी आश्चर्यचकित रह गए। उन्होंने घूमकर देखा कि आस-पास कई मुसलमान पगड़ी बांधे हुए हैं। वह समझ नहीं पाए कि केवल उन्हें ही क्यों फटकारा गया है।

"श्रीमान," उन्होंने उत्तर दिया, "मैं समझ नहीं पा रहा हूं कि मैं अपनी पगड़ी क्यों उतार दूं। मैं तो नहीं उतारता।"

न्यायाधीश ने चिल्लाकर कहा, "पगड़ी उतारते हो कि नहीं?"

यह सुनकर गाँधीजी न्यायालय से उठ खड़े हुए।

अब्दुल्ला सेठ गाँधीजी के पीछे दौड़ पड़े और उनकी बांह पकड़कर बोले, "आप जानते नहीं हैं श्रीमान गाँधी ! मैं आपको बताता हूं कि ये गोरी चमड़ी वाले हम लोगों के साथ ऐसा व्यवहार क्यों करते हैं?" उन्होंने आगे कहा, "ये लोग भारतीयों को हीन भावना से देखते हैं और उन्हें 'कुली' या 'सामी' कहकर पुकारते हैं। मुसलमानों को पगड़ी पहनने की इजाजत इसलिए दी गई है क्योंकि उनके धर्म में वैसे कपड़े पहनना ज़रूरी है।"

गाँधीजी की आंखें क्रोध से तमतमाने लगीं।

"न्यायाधीश ने मेरा अपमान किया है," उन्होंने कहा, "यह नियम तो किसी भी स्वतंत्र आदमी का अपमान है। ऐसे अपमानजनक नियम के खिलाफ मैं आज ही डरबन प्रेस में लिखकर अपना विरोध प्रदर्शित करूंगा।"

समाचार-पत्र में उनका पत्र प्रकाशित हुआ और उसे खासा प्रचार भी मिला। फिर भी कुछ लोगों की दृष्टि में गाँधीजी 'अप्रिय अतिथि' माने गए।

डरबन में एक सप्ताह बिताने के बाद गाँधीजी को प्रिटोरिया के लिए रवाना होना था। वहां उन्हें एक मुकदमे की पैरवी करनी थी। प्रथम श्रेणी का टिकट लेकर वह रेल में चढ़े। रात को रेल नेटाल की राजधानी मैरित्सबर्ग पहुंची। एक अंग्रेज़ गाँधीजी के डिब्बे में चढ़ गया।

उसने गाँधीजी की तरफ घृणा से देखा, कंडक्टर को बुलाया और कहा, “इस कुली को यहां से उठाकर ले जाओ और वहां पटक दो जहां इसकी जगह है। मैं काले आदमी के साथ यात्रा नहीं करूंगा।”

“जो आज्ञा श्रीमान,” कंडक्टर ने उत्तर दिया।

गाँधीजी को घूरते हुए वह बोला, “चलो, मेरे साथ दूसरे डिब्बे में चलो।”"

“नहीं। मैं नहीं जाऊंगा,” गाँधीजी ने विरोध करते हुए उत्तर दिया, “मेरे पास प्रथम श्रेणी का टिकट है और मुझे अधिकार है कि मैं यहां बैठ सकूं।”

तभी एक सिपाही को बुलाया गया और गाँधीजी को बोरिया-बिस्तर के साथ उनके डिब्बे से बाहर निकाल दिया गया। उन्हें प्लेटफार्म पर ही छोड़कर रेल चली गई। गाँधीजी ने वह रात सर्दी से ठिठुरते हुए प्लेटफार्म के अंधेरे प्रतीक्षालय में काटी।

यह कड़वा अनुभव गाँधीजी के मन में घर कर गया। उन्होंने प्रतिज्ञा की, कि चाहे जो भी कीमत चुकानी पड़े, वह हर अन्याय के खिलाफ लड़ेंगे। उन्होंने रेलवे के जनरल मैनेजर को अपना विरोध-पत्र भेजा, लेकिन वहां उनके कर्मचारी के पक्ष को ही सही ठहराया गया।

इसी यात्रा में कुछ और मुश्किलें भी उनकी राह देख रही थीं। उन्हें चार्ल्सटाउन से जोहान्सबर्ग घोड़ागाड़ी में जाना था। उनके पास प्रथम श्रेणी का टिकट था, लेकिन गोरे कंडक्टर ने उन्हें अंदर नहीं बैठने दिया।

कंडक्टर ने गाँधीजी का मज़ाक उड़ाया, "ओ बैरिस्टर कुली ! तुम अंग्रेज़ों के साथ अंदर नहीं बैठ सकते। टिकट हो या न हो, बैठना होगा बाहर कोच के पायदान पर। वैसे वह मेरे बैठने की जगह है, पर अपनी जगह मैं तुम्हें दे दूंगा और तुम्हारी जगह पर मैं बैठ जाऊंगा।"

इस अपमान से गाँधीजी तमतमा उठे। भारी मन वह चालक के पीछे वाली जगह जाकर बैठ गए। उस समय वह झगड़ने की मनोस्थिति में नहीं थे।

फिर जब एक जगह घोड़े बदलने के लिए गाड़ी रुकी तो कंडक्टर गाँधीजी के पास आकर बोला, "ऐ सामी, तुम नीचे बैठो। हम सिगरेट पीएगा।"

और उसने पैरों के पास एक गंदा थैला फैला दिया। यह देख गाँधीजी तिलमिला कर बोले, "मेरे पास प्रथम श्रेणी का टिकट है जिसके अनुसार मैं अंदर बैठ सकता हूं। लेकिन तुमने मुझे यहां बैठने के लिए मजबूर किया। अब तुम यह चाहते हो कि मैं तुम्हारे पैरों में बैठूं। नहीं, मैं यहां नहीं बैठूंगा।"

"तुम्हें यहीं बैठना होगा," कंडक्टर ने चीखकर कहा। फिर उसने गाँधीजी को घूंसा दे मारा। धक्का देते हुए कंडक्टर उन्हें नीचे उतारने लगा। गाँधीजी बर्दाश्त करते रहे और वह घोड़ागाड़ी का सरिया पकड़े खड़े रहे। लेकिन अगले घूंसे ने तो उन्हें करीब-करीब धराशायी ही कर दिया।

यह देख गाड़ी में बैठे कुछ यात्री सहसा शोर मचाने लगे। किसी ने कहा, "बंद करो यह सब। उसे छोड़ दो कंडक्टर। वह ठीक बोल रहा है। उसे अंदर आकर हमारे साथ बैठने दो।"

कंडक्टर को गाँधीजी को छोड़ देना पड़ा।

अगली रात वह जोहान्सबर्ग पहुंचे। इस घटना ने भी उन्हें काले लोगों की दयनीय हालत पर सोचने को मजबूर कर दिया। गाँधीजी के पास एक मुसलमान व्यापारी का पता था, लेकिन इतनी रात गए उन्होंने उसके घर जाना ठीक नहीं समझा। टैक्सी से वह ग्रैंड नेशनल होटल पहुंच गए।

होटल के मैनेजर ने उनकी तरफ गौर से देखा और कहा, "क्षमा कीजिए, कोई कमरा खाली नहीं है।"

गाँधीजी समझ गए कि केवल काले रंग के कारण ही उन्हें कमरा देने से इंकार कर दिया गया है। अब उनके सामने उस व्यापारी के यहां जाने के अलावा कोई चारा नहीं था। वह उसके यहां रात बिताने चले गए।

दूसरे दिन फिर उन्होंने प्रथम श्रेणी का टिकट खरीदा और रेल से प्रिटोरिया जाने के लिए रवाना हुए। उस डिब्बे में केवल एक और यात्री था। वह ठीक-ठीक कपड़े पहने एक अंग्रेज़ था। गाँधीजी को आता देख उसने अखबार पर से नज़र उठाकर गाँधीजी को देखा, सिर हिलाया और फिर पढ़ने में डूब गया। कुछ देर बाद ही कंडक्टर आ पहुंचा। गाँधीजी ने फुर्ती से उसे अपना प्रथम श्रेणी का टिकट दिखा दिया।

"टिकट से कुछ नहीं होता सामी," कंडक्टर ने गुर्राकर कहा, "उठो और फोरन तीसरे दर्जे में चले जाओ।

इससे पहले कि गाँधीजी कोई उत्तर देते, साथ बैठे अंग्रेज़ ने अखबार रख दिया और कंडक्टर की तरफ देखा। वह तीखी आवाज़ में बोला, "आखिर इस भले आदमी को तंग करने में तुम्हें क्या मिल रहा है? टिकट के अनुसार उसे अधिकार है कि वह यहां बैठ सके।" फिर गाँधीजी की तरफ देखकर वह बोला, "जहां बैठे हो, आराम से बैठो।"

गाँधीजी ने उसे धन्यवाद दिया और एक किताब खोलकर पढ़ने लगे।

रेल देर शाम तक प्रिटोरिया पहुंची। गाँधीजी को स्टेशन पर लेने कोई नहीं आया, इसलिए रात उन्हें एक होटल में ही काटनी पड़ी।

दूसरे दिन उनके मित्र ने उन्हें एक मकान में ठहरा दिया जहां वह किराये पर रहने लगे। उन्होंने अब्दुल्ला के मुकदमे पर भी काम शुरू कर दिया। काम में व्यस्त रहते हुए भी उन्होंने प्रिटोरिया में रहने वाले भारतीय लोगों की एक बैठक बुलाई। इसमें तैयब हाज़ी खाँ मोहम्मद ने उनकी सहायता की जो वहां के प्रभावशाली भारतीय व्यापारी थे। गिनती के

प्रिटोरिया निवासी भारतीय इस बैठक में भाग ले पाए। उस समय गाँधीजी ने पहली बार किसी सभा में भाषण दिया। वह बोले, "यहां हम लोगों के साथ बहुत भेदभाव बरता जाता है। आखिर जन्म, परिवार, जाति और धर्म के आधार पर हमें अलग क्यों समझा जा रहा है? हम लोगों को एक संगठन बनाना चाहिए जिसमें सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व हो और हम लोग अपनी ज़रूरतों और शिकायतों की सूचना प्रशासन को देते रहें।"

श्रोताओं ने गाँधीजी की बात को बड़े ध्यान से सुना। फिर यह तय किया गया कि प्रिटोरिया के सभी भारतीयों की नियमित बैठक हुआ करेगी।

साथ-ही-साथ गाँधीजी दादा अब्दुल्ला एंड कंपनी और उनके प्रतिपक्षी के बीच हुए पत्र-व्यवहार का अंग्रेज़ी में अनुवाद भी करते रहे। सब बातों का अध्ययन करने पर उन्होंने यह पाया कि उनके मुवक्किल का दावा न्याय की दृष्टि से उचित है। वह यह भी जानते थे कि मुकदमा अगर कोर्ट में रहता है तो बरसों चलता रहेगा, इसलिए उन्होंने दोनों पक्षों के प्रतिनिधियों को बुलाया। गाँधीजी उनसे बोले, "मेरा सुझाव है कि आप लोग किसी ऐसे आदमी को मध्यस्थता के लिए क्यों नहीं चुन लेते जिस पर दोनों ही पक्ष पूरा विश्वास कर सकें।"

कंपनी के प्रतिनिधियों ने उनकी बात को बड़ी गंभीरता से सुना। इस तरह के नए विचार सुनकर उन्हें आश्चर्य भी हुआ। यह युवक उन वकीलों जैसा नहीं है, जैसे वकीलों से वह अब तक मिलते रहे थे। इस सुझाव की उन्होंने प्रशंसा की और वह सहमत हो गए।

समझौते के लिए मध्यस्थ की नियुक्ति की गई। दोनों पक्षों की बात सुन लेने के बाद उसने अपना निर्णय गाँधीजी के मुवक्किल दादा अब्दुल्ला एंड कंपनी के पक्ष में दिया। उनकी जीत हुई थी, लेकिन गाँधीजी ने अपने पक्ष से कहा कि वह प्रतिपक्ष के साथ नरमी का व्यवहार करें। वे इस बात के लिए सहमत हो गए कि जो धन लिया जाना है, वह एकमुश्त न लिया जाए बल्कि इसे लंबे समय की किस्तों में वसूल किया जाए। इस समझौते से दोनों पक्ष संतुष्ट हो गए।

एक वकील के रूप में गाँधीजी की यह पहली विजय विरोधी को पछाड़ देने की नहीं, बल्कि मानवता और सद्भावना की विजय थी।

ऑरेंज फ्री स्टेट में सन् 1888 में लागू किए गए एक कानून के अनुसार वहां के भारतीय अपने सभी अधिकारों से वंचित कर दिए गए थे। वे केवल एक शर्त पर रह सकते थे। शर्त यह थी कि उन्हें नौकर-चाकर का काम करना पड़ेगा। वहां के भारतीय व्यापारियों को भी नाममात्र का हरजाना देकर बाहर भेज दिया गया था।

सन् 1886 में पास किए गए एक कानून के अनुसार ट्रांसवाल में रहने वाले भारतीयों को प्रति व्यक्ति तीन पौंड 'व्यक्ति-कर' हर साल देना पड़ता था। कुछ जगह उनके लिए अलग छोड़ दी गई थी और इसके अलावा वे वहां ज़मीन भी नहीं खरीद सकते थे। उनके पास मताधिकार नहीं था। यदि वे रात नौ बजे के बाद कहीं जाते थे तो उन्हें अपने पास अनुमति-पत्र रखना पड़ता था। कुछ ऐसे प्रमुख रास्ते थे जिन पर से उन्हें गुज़रने की इजाजत नहीं थी। जिस तरह का व्यवहार भारतीय लोगों के साथ किया जाता था वह गाँधीजी को बहुत अपमानजनक लगा। उन्हें लगा यह उनका कर्त्तव्य है कि वह उनके अधिकारों की रक्षा करें।

गाँधीजी रोज़ शाम को अपने अंग्रेज़ मित्र श्री कोट्स के साथ घूमने जाया करते थे और कभी भी रात दस से पहले नहीं लौटते थे। उन्होंने राज्य के अटॉर्नी से इस तरह का एक पत्र ले रखा था कि वह पुलिस की आज्ञा के बिना जब चाहे बाहर जा सकें।

एक शाम गाँधीजी अकेले थे। अपनी आदत के अनुसार फुर्ती से चले जा रहे थे कि अचानक उन पर किसी नें हमला कर दिया। वह गिर गए और उन्हें चोट भी आई। हमलावर पुलिस का ही एक सिपाही था।

“अब तुम्हें कानून समझ में आएगा,” सिपाही चिल्लाकर बोला, “क्या तुम जानते नहीं कि किसी भी भारतीय को राष्ट्रपति भवन के पिछले भाग से गुज़रने की आज्ञा नहीं है?”

यह कहकर सिपाही ने गाँधीजी को फिर से एक ठोकर लगाई।

तभी पीछे से किसी परिचित की आवाज़ आई, "अरे गाँधी, लगी तो नहीं?"

यह आवाज़ श्री कोट्स की थी। जब गाँधीजी पर हमला किया जा रहा था, तब वह उधर से गुजर रहे थे। श्री कोट्स ने सिपाही को चेतावनी दी।

"यह आदमी मेरा मित्र है और एक सुप्रसिद्ध वकील भी," वह बोले, "अगर यह तुम्हारी शिकायत करेगा तो मैं तुम्हारे खिलाफ गवाही दूंगा।"

फिर वह गाँधीजी के पास जाकर बोले, "मुझे बड़ा खेद है गाँधी, तुम पर ऐसा निर्मम आक्रमण किया गया।"

"इसमें खेद की कोई बात नहीं," गाँधीजी ने कहा, "वह बेचारा यह सब कैसे जान सकता है? उसके लिए तो सारे काले लोग एक बराबर हैं। मैंने तो यह नियम बना लिया है कि किसी भी व्यक्तिगत शिकायत के लिए मैं अदालत में नहीं जाऊंगा।"

"तुम बिलकुल ठीक कहते हो गाँधी," कोट्स ने कहा। वे उस सिपाही के दुर्व्यवहार पर अब भी नाराज़ थे।

कोट्स दोबारा सिपाही से बोले, "इन्हें यहां के नियम तुम विनम्रता से भी तो बता सकते हो, ज़रूरी नहीं कि तुम उन पर टूट पड़ो।"

गाँधीजी ने कहा, "कोई बात नहीं। मैंने इसे क्षमा कर दिया है।"

अब्दुल्ला का मुकदमा निपट गया तो गाँधीजी को लगा कि दक्षिण अफ्रीका में रुकने की अब कोई आवश्यकता नहीं है। सन् 1893 के अंत में वह भारत लौटने के लिए अपना रिज़र्वेशन करवाने डरबन गए। अब्दुल्ला ने उनके सम्मान में एक विदाई पार्टी का आयोजन किया।

उसी दिन गाँधीजी ने समाचार-पत्र में पढ़ा कि नेटाल विधान सभा के पास स्वीकृति के लिए एक ऐसा विधेयक है जो अगर लागू हो गया तो भारतीयों का विधान सभा के लिए सदस्य

चुनने का अधिकार छिन जाएगा। यहां भी उन्हें मताधिकार नहीं मिलेगा। इस बात को गाँधीजी ने उस पार्टी में आए हुए लोगों के सामने रखा।

"हमें ऐसे मामलों से क्या लेना-देना," अब्दुल्ला सेठ ने कहा, "हम तो केवल वही बात समझ सकते हैं जिनका असर हमारे व्यापार पर पड़ता हो।"

गाँधीजी ने गंभीरता से बताया, "यह विधेयक अगर पास होकर कानून बन जाता है, तो हमें खासी परेशानी में डाल देगा। यह तो एक तरह से हमारी मौत की शुरुआत है। हमारे बुनियादी आत्म-सम्मान पर आघात है।"

तब भारतीयों को मालूम पड़ा कि कौन-सी बात दांव पर लगी है, लेकिन वे लोग यह सोचने में असमर्थ थे कि आखिर किया क्या जाए। उन्होंने गाँधीजी से अनुरोध किया कि वह भारत जाना रद्द करें और उनकी सहायता करें।

गाँधीजी सहमत हो गए कि एक महीना रुककर वे इस विधेयक के खिलाफ विरोध प्रदर्शित करने के लिए काम करेंगे। देर रात को भारतीय लोगों ने अब्दुल्ला सेठ के घर एक बैठक की। अध्यक्ष थे वहां के अत्यंत प्रभावशाली भारतीय व्यापारी सेठ हाज़ी मोहम्मद। लोगों ने मताधिकार के इस विधेयक का पूरी शक्ति के साथ विरोध करने की प्रतिज्ञा की।

विधान सभा अध्यक्ष को तार भेजे गए और नेटाल के प्रधानमंत्री से प्रार्थना की गई कि इस विधेयक पर हो रहे विमर्श को स्थगित कर दिया जाए। अध्यक्ष ने तत्काल उत्तर दिया कि विचार-विनिमय दो दिन के लिए रोक दिया जाएगा। उसके बाद नेटाल के भारतीयों ने विधान सभा को इस विधेयक के खिलाफ एक याचिका भेजी। साथ ही एक याचिका लार्ड रिपन को भी भेजी गई जो उस समय वहां के उपनिवेश मंत्री थे। इस पत्र पर दस हज़ार से अधिक भारतीय लोगों ने हस्ताक्षर किए थे। याचिका की प्रतियां दक्षिण अफ्रीका, इंग्लैंड और भारत में भी वितरित की गईं। नेटाली भारतीयों के प्रति सहानुभूति की कमी नहीं थी, लेकिन आंदोलन को शुरू होने में इतनी देर हो गई थी कि यह विधेयक कानून बनने से बच नहीं सका।

फिर भी इस आंदोलन से कुछ तो हुआ ही। भारत के लोगों को पहली बार नेटाल की स्थिति के बारे में जानकारी मिली। इसका परिणाम महत्त्वपूर्ण रहा। दक्षिण अफ्रीका में पैदा हुई एक ऐसी नई लहर, जिसने भारतीय मूल के लोगों में जागृति पैदा कर दी।

नेटाली भारतीयों ने गाँधीजी से प्रार्थना की, कि वह वहां कुछ समय और रुक जाएं और उनका पथ-प्रदर्शन करें। गाँधीजी ने कहा कि वह वहां रुकने के लिए सहमत हैं अगर वहां रहने वाले भारतीय उन्हें पर्याप्त कानूनी काम दे सकें। सभी इस पर खुशी से राज़ी हो गए। बीस व्यापारियों ने अपने कानूनी काम गाँधीजी को सौंप दिए।

जब गाँधीजी ने अदालत में वकील के रूप में काम करने के लिए अर्ज़ी दी तो वहां के अंग्रेज़ वकीलों ने इसका कड़ा विरोध किया, लेकिन नेटाल के सर्वोच्च न्यायालय ने वकीलों के इस विरोध पर ध्यान न देते हुए उन्हें काम करने की अनुमति दे दी।

शीघ्र ही गाँधीजी डरबन में बेहद व्यस्त वकीलों की गिनती में आ गए। लेकिन वकालत तो उनके लिए दूसरी प्राथमिकता का पेशा था, उनकी प्रमुख रुचि तो जन-कार्यों में थी। उन्हें लगा कि केवल याचिकाएं और विरोध-पत्र भेजने से ही भारतीयों का काम नहीं चलेगा। यहां एक सुनियोजित आंदोलन चलाने की आवश्यकता है।

इसलिए उन्होंने सलाह दी कि भारतीयों के हितों की रक्षा के लिए एक स्थायी संगठन बनाया जाना चाहिए। इस विषय पर चर्चा करने के लिए बैठक बुलाई गई। दादा अब्दुल्ला के निवास का बड़ा हाल पूरा भर गया। उस समय वहां नेटाल इंडियन कांग्रेस की स्थापना की गई।

सन् 1894 में नेटाल सरकार ने अनुबंध के अंतर्गत लाए गए भारतीयों पर वार्षिक व्यक्ति-कर लगाने का फैसला लिया। ये वे मज़दूर थे जो पांच साल के लिए अनुबंध पर भारत से लाए गए थे और इतने कम वेतन पर काम करते थे, कि जिससे ठीक से पेट भी न भर सके | वे अपने मालिक को छोड़ नहीं सकते थे। इनके साथ गुलामों जैसा बर्ताव किया जाता

था। इन लोगों को दक्षिण अफ्रीका इसलिए ले जाया गया कि ये उस उपनिवेश में रहने वाले गोरे लोगों की खेती के कामों में सहायता करें।

भारतीय लोगों ने उम्मीद से भी अच्छा काम करके दिखाया। उन्होंने कड़ी मेहनत की। ज़मीनें खरीदीं और खुद अपने खेतों में अनाज पैदा करना शुरू कर दिया। इनके प्रयास यहीं समाप्त नहीं हुए। उन्होंने वहां मकान बना लिए और मजदूरों से कहीं अधिक अच्छे स्तर पर रहने लगे। गोरों को यह सब पसंद नहीं आया। वे चाहते थे कि अनुबंध समाप्त होते ही ये लोग अपने देश वापस चले जाएं। इन लोगों को परेशानी में डालने के लिए ही शासन ने 25 पौंड वार्षिक का व्यक्ति-कर इन पर थोप दिया था।

नेटाल भारतीय कांग्रेस ने इसके विरुद्ध सशक्त आंदोलन शुरू कर दिया। बाद में भारत के तत्कालीन वायसराय लार्ड एल्गिन के हस्तक्षेप से वह कर 3 पौंड कर दिया गया। गाँधीजी ने इसे 'निष्ठुर कर' का नाम दिया। ऐसा कर विश्व के किसी हिस्से में कभी नहीं लगाया गया था। नेटाल इंडियन कांग्रेस ने अपना आंदोलन जारी रखा। बीस वर्ष बाद जाकर कहीं यह व्यक्ति-कर पूरी तरह से हटाया जा सका।

गाँधीजी ने दक्षिण अफ्रीका में तीन साल बिताए। अब वह विख्यात व्यक्ति थे। हर आदमी उनको उनके अंगरखे और पगड़ी से पहचानता था। उनका वकालत का काम भी खूब जम गया था। उन्हें लगा कि वह लंबे समय के लिए रुक गए हैं। वह यह जानते थे कि लोग उन्हें वहां चाहते हैं। 1896 में उन्होंने घर जाने और पत्नी तथा बच्चों को दक्षिण अफ्रीका ले आने की अनुमति चाही क्योंकि वह सोचते थे कि उनकी भारत-यात्रा अपने काम के अलावा दक्षिण अफ्रीकी भारतीयों के पक्ष में समर्थन प्राप्त करने में भी सहायक होगी। उन्होंने सारा काम इस तरह व्यवस्थित कर दिया कि वह छह महीने की छूट्टी प्राप्त कर सकें।

6

सन् 1896 के मध्य में गाँधीजी भारत के लिए रवाना हुए। 24 दिन की जहाज़ यात्रा के बाद वह कलकत्ता पहुंचे। वहां से वे राजकोट गए। कस्तूरबाई और दोनों पुत्र उनसे मिले। वह एक सुखद पारिवारिक मिलन था।

गाँधीजी के दिमाग पर दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों की स्थिति इस तरह छाई रहती थी कि वह शांतिपूर्वक गृहस्थ जीवन का सुख भोगकर भी संतुष्ट नहीं थे। तब उन्होंने सोचा कि भारतीय जनता को दक्षिण अफ्रीका में हो रही क्रूरता की वास्तविक स्थिति के बारे में बताया जाए।

वह प्रमुख अखबारों के संपादकों और कई भारतीय नेताओं से मिले। इनमें मुख्य थे – महाराष्ट्र के नेता बाल गंगाधर तिलक और गोपाल कृष्ण गोखले जो गाँधीजी की तरह ही सत्ताईस वर्ष की उम्र में काफी विख्यात हो गए थे।

गाँधीजी जहां-जहां गए, उन्होंने दक्षिण अफ्रीकी देशबंधुओं के बारे में लोगों को जानकारी देकर उन्हें जागरूक करने का प्रयत्त किया। कई अखबारों ने गाँधीजी का दृष्टिकोण प्रकाशित भी किया।

उन्हीं दिनों बंबई में प्लेग फैल गया और भय दिखाई देने लगा कि यह सब जगह फैल जाएगा। गाँधीजी राजकोट के एक सेवा दल में शामिल हो गए जो नागरिकों को सफाई और बीमारी की रोकथाम के उपाय सिखाने के प्रयास कर रहा था, ताकि रोग अधिक न फैले।

नवंबर के अंत में गाँधीजी को नेटाल से एक ज़रूरी समाचार मिला। इसमें गाँधीजी से आग्रह किया गया था कि वह तत्काल लौट आएं। वहां कुछ ऐसी बातें हो गई थीं कि जिसमें उनकी उपस्थिति आवश्यक थी।

एक बार फिर गाँधीजी दक्षिण अफ्रीका के लिए रवाना हुए। इस बार वह कस्तूरबाई और अपने दोनों बच्चों के अलावा विधवा बहन के इकलौते लड़के को भी साथ ले गए।

7

दक्षिण अफ्रीका के यूरोपवासियों ने सुना कि गाँधीजी लौट रहे हैं। उन लोगों ने नेटालवासी श्वेत लोगों के खिलाफ भारत में किए जा रहे प्रचार के बारे में भी सुन रखा था। सभाएं की गईं कि जब गाँधीजी लोटें, तो उनके साथ कैसे निपटा जाए।

इसी बीच यह अफवाह भी फैल गई कि गाँधीजी दो जहाज़ भर भारतीयों सहित वहां बसने के लिए वापस आ रहे हैं। यह सही है कि कुछ अन्य भारतीय नेटाल जा रहे थे और वे दो जहाज़ों में भी थे, लेकिन उनका गाँधीजी से कोई संबंध नहीं था।

18 दिसंबर को गाँधीजी का जहाज़ डरबन पहुंचा। बिना ठीक से डाक्टरी जांच करवाए यात्रियों को जहाज़ से उतरने की आज्ञा नहीं थी क्योंकि वे बंबई से आ रहे थे, जहां प्लेग फैला हुआ था। जहाज़ लगभग पांच दिन तक बंदरगाह से अलग खड़ा रहा जिससे उसके संसर्ग से रोग न फैले।

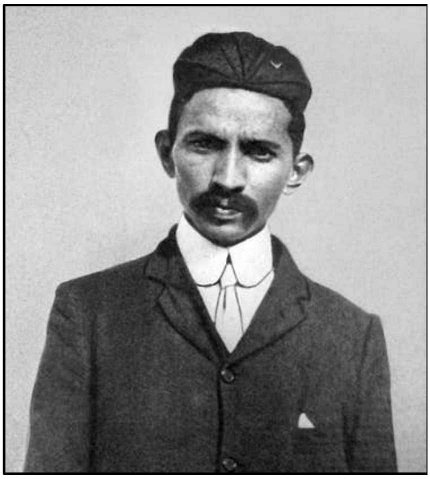

जोहान्सबर्ग में, १९००

डरबन के गोरों ने गाँधीजी और अन्य भारतीयों के आने पर आंदोलन शुरू कर दिया था। इस आंदोलन ने जहाज़ के किनारे लगने में और देरी लगा दी। भारत में यूरोप-विरोधी भावना फैलाने के लिए गाँधीजी की निंदा की जा रही थी। आखिरकार 23 दिनों के बाद जहाज़ को बंदरगाह में घुसने की अनुमति दी गई।

गाँधीजी को किसी तरह यह सूचना भेज दी गई कि वह अन्य लोगों के साथ जहाज़ से न उतरें और शाम तक प्रतीक्षा करें क्योंकि बंदरगाह पर गोरों की क्रुद्ध भीड़ जमा है।

कस्तूरबाई और बच्चों को गाँधीजी के पारसी मित्र रुस्तमजी के घर भेज दिया गया। बाद में दादा अब्दुल्ला एंड कंपनी के कानूनी सलाहकार श्री लॉटन के साथ गाँधीजी किनारे पर आए। तब कहीं शांति थी। परंतु कुछ युवकों ने उन्हें पहचान लिया और वे चिल्लाए, "देखो, गाँधी जा रहा है।"

लोग एकदम इकट्ठे हो गए और शोर मच गया। गाँधीजी और श्री लॉटन जब वहां से गुज़र रहे थे, तब भीड़ इतनी अधिक बढ़ गई कि कदम आगे रखना भी मुश्किल हो गया। तभी श्री लॉटन एक तरफ धकेल दिए गए और भीड़ गाँधीजी पर टूट पड़ी।

उन लोगों ने गाँधीजी पर पत्थर, बेंत, ईंट और सड़े हुए अंडों की बौछार कर दी। कोई उनकी पगड़ी ले भागा। दूसरे लोगों ने इस कदर ठोकरें मारीं कि उनका दुर्बल शरीर सहन न कर सका। उन्हें चक्कर आ गया, पर वह एक दीवार के जंगले के साथ टिके रहे। गोरों की उत्तेजना अबाध थी। वे लगातार गाँधीजी को पीटते रहे और ठोकरें मारते रहे।

तभी भीड़ में से किसी औरत के चिल्लाने की आवाज़ सुनाई दी, "रुको कायरों, उसे पीटना बंद करो।"

यह आवाज़ पुलिस सुपरिंटडेंट की पत्नी की थी। वह गाँधीजी और भीड़ के बीच में आ गई। भीड़ रुक गई। जल्दी ही पुलिस भी आ गई और उन्होंने भीड़ को तितर-बितर कर दिया। गाँधीजी को पुलिस चौकी में रुकने को कहा गया, लेकिन उन्होंने साफ मना कर दिया।

वह बोले, "ये लोग जब अपनी गलती समझेंगे, तब स्वयं शांत हो जाएंगे। "

फिर पुलिस की सुरक्षा में वह रुस्तमजी के घर पहुंचे। वहां एक डाक्टर ने उनके घावों की मरहम-पट्टी की।

सांझ ढलते ही गोरों ने वह मकान भी घेर लिया।

क्रुद्ध आवाज़ों ने मांग की, "गाँधी को हमारे हवाले करो।"

वे चिल्लाने लगे, "अगर हमें गाँधी नहीं मिला, तो हम इस मकान को ही आग लगा देंगे।"

गाँधीजी जानते थे कि लोग ऐसा कर सकते हैं। इसलिए उन्होंने पुलिस कप्तान श्री एलेक्ज़ेंडर की सलाह मान ली। उन्होंने हिन्दुस्तानी सिपाही की वर्दी पहनी और भीड़ को चकमा देकर वहां से भाग निकले।

दो दिन बाद लंदन से एक सूचना आई। तत्कालीन उपनिवेश मंत्री श्री जोसेफ चेंबरलैन ने नेटाल सरकार से कहा कि गाँधीजी पर हमला करने वाले हर व्यक्ति पर मुकदमा चलाया जाए। नेटाल सरकार ने गाँधीजी से उस घटना के प्रति खेद प्रकट किया और विश्वास दिलाया कि प्रत्येक हमलावर को सज़ा दी जाएगी।

जब गाँधीजी को बुलाया गया कि वह अपराधियों को पहचानें, तो उन्होंने ऐसा करने से इंकार कर दिया। "मैं नहीं चाहता कि किसी पर भी मुकदमा चलाया जाए," वह बोले, "मैं उन लोगों को दोष नहीं देता। वे लोग मेरे बारे में फैली गलत खबरों से गुमराह हो गए हैं। मेरा विश्वास है कि जैसे ही सच्चाई उनके सामने आएगी, वे लोग अपने किए पर दुखी होंगे।"

गाँधीजी के इस वक्तव्य ने डरबन का वातावरण ही बदलकर रख दिया। समाचार-पत्रों ने गाँधीजी को निरपराधी बताया और उन लोगों की निंदा की जिन्होंने उपद्रव किया था। डरबन की इस घटना ने गाँधीजी की ख्याति को बढ़ाया और विदेशों में दक्षिण अफ्रीकी भारतीयों को पहले के मुकाबले अधिक सहानुभूति प्राप्त होने लगी।

दक्षिण अफ्रीका में जब संघर्ष लगातार चल रहा था, गाँधीजी में एक तरह का परिवर्तन आने लगा। उन्होंने आराम और सुविधा का जीवन त्यागना शुरू कर दिया। जैसे-जैसे वह जन-कार्यों में व्यस्त होते गए, वैसे-वैसे उनका जीवन और सादा होता गया। उन्होंने अपना खर्चा कम कर दिया। वे खुद ही कपड़े धोने लगे और उन पर इस्त्री भी करने लगे। यह काम शुरू-शुरू में तो वह अच्छी तरह नहीं कर पाए और इससे दूसरे वकील उन पर हँसे भी, लेकिन शीघ्र ही वह इन कामों में पारंगत हो गए। अब उनकी कालर कम सख्त और कम चमकदार नहीं रहती थी।

एक बार प्रिटोरिया में गाँधीजी नाई के पास गए। नाई ने उनके साथ बदतमीज़ी की और उनके बाल काटने से मना कर दिया। उसने ऐसा इसलिए किया क्योंकि गाँधीजी "काली चमड़ी' के थे। गाँधीजी उसी समय बाल काटने की मशीन खरीद लाए और उन्होंने अपने बाल खुद ही काट लिए। आगे के बाल काटने में तो थोड़ी बहुत सफलता मिल भी गई, लेकिन पीछे के बाल उन्होंने बिगाड़ लिए। वह अजीब लग रहे थे। उन्हें देखकर न्यायालय में उनके मित्र उन पर हँसने लगे। उन्होंने पूछा, "तुम्हारे बालों को क्या हुआ है गाँधी? क्या इन्हें चूहों ने कुतर डाला?"

बोअर युद्ध के समय भारतीय सेवा दल के साथ, १८९९ (गांधीजी दूसरी पंक्ति में दी ओर से चौथे स्थान पर बैठे हैं.)

गाँधीजी ने गर्व से उत्तर दिया, "नहीं भाई, मैंने इन्हें खुद ही काटा है।"

इसके बाद गाँधीजी ने अपने भोजन में भी परिवर्तन कर लिया और अब वह बिना पका भोजन खाने लगे। वह इस बात में विश्वास करते थे कि यदि ताज़े फलों और कंदमूलों पर निर्भर रहा जाए, तो आदमी संयमी रह सकता है और आध्यात्मिक शक्ति को भी प्राप्त कर सकता है। अपने खाने के साथ उन्होंने कई प्रयोग किए। वह इस निर्णय पर पहुंचे कि उपवास रखने से आत्मबल बढ़ता है।

उन्हीं दिनों बोअर युद्ध की घोषणा हो गई। बोअर लोग मूलत: डच के रहनेवाले थे जो अब दक्षिण अफ्रीका में रहते थे। वह अपनी आज़ादी के लिए ब्रिटिश लोगों से लड़ रहे थे। हालांकि दोनों ही श्वेत राष्ट्रों ने भारतीय लोगों के साथ अच्छा सलूक नहीं किया था और गाँधीजी इन दोनों में से किसी को भी समर्थन नहीं देना चाहते थे, लेकिन ब्रिटिश शासन के

प्रति निष्ठा के कारण उन्होंने घायलों की सहायता के लिए एक भारतीय सेवा दल की स्थापना की। इस बात से उनके अनुयायियों को आश्चर्य हुआ। जिस पर गाँधीजी ने उन्हें समझाया, "केवल ब्रिटिश साम्राज्य में रहकर विकास करते हुए ही भारत पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त कर सकता है। इसलिए हमें अंग्रेज़ों की सहायता करनी चाहिए।"

युद्ध में अंग्रेज़ों को सफलता मिली और सेवा दल को भंग कर दिया गया। इंग्लैंड के अखबारों ने सेवा दल की इस सहायता के लिए भारतीय जनता की तारीफ की। भारतीय और यूरोपवासियों के बीच अब सौहार्दपूर्ण संबंध हो गए थे और वे आशा करने लगे थे कि उनकी शिकायतें अब जल्दी ही दूर हो जाएंगी।

सन् 1901 तक गाँधीजी को अपना परिवार डरबन लाए छह वर्ष हो चुके थे। अब उन्हें लगने लगा कि उनका अगला कार्यक्षेत्र दक्षिण अफ्रीका नहीं बल्कि भारत है। भारतीय मित्र भी गाँधीजी को घर लौट आने के लिए कह रहे थे। जब उन्होंने अपने साथ काम करने वालों को अपना निर्णय बताया, तो वे लोग उन्हें और ठहरने के लिए आग्रह करने लगे। लंबी चर्चा के बाद वे राज़ी तो हो गए, पर उनकी शर्त यह थी कि जब भी डरबन में रहे भारतीय लोगों को उनकी आवश्यकता होगी, वह दक्षिण अफ्रीका अवश्य लौट आएंगे। गाँधीजी इस पर सहमत हो गए।

विदाई के आयोजन किए गए और उन्हें अनेक उपहार भेंट में दिए गए। उपहार इतने अधिक और बेशकीमती थे कि गाँधीजी को उन्हें स्वीकार करना अनुचित लगा। वह उपहारों को लौटा देना चाहते थे, लेकिन वे लोग इन्हें वापस लेने को तैयार नहीं थे। गाँधीजी ने सारी चीज़ें बैंक में जमा करवा दीं और एक शर्तनामा तैयार किया कि इन उपहारों का प्रयोग वहां की भारतीय जनता के कल्याण के लिए किया जाए।

8

सन् 1901 में भारत लौटने पर गाँधीजी देश की यात्रा पर निकले। कलकत्ता में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन दिनशा वाचा की अध्यक्षता में हो रहा था। गाँधीजी ने अधिवेशन में भाग लिया। कांग्रेस के साथ यह उनका पहला संपर्क था। इसी कांग्रेस का भविष्य में उन्होंने नेतृत्व किया। उन दिनों भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ही एकमात्र ऐसी संस्था थी जिसने भारतीय जनता को अपना राजनीतिक दृष्टिकोण ब्रिटिश सत्ता के सामने रखने का अवसर दिया। कई प्रसिद्ध भारतीय व्यक्ति उसके सदस्य थे और वह एक प्रभावशाली संस्था भी थी, लेकिन उसके निर्णयों का प्रभाव नहीं के बराबर था। सरकार पर अधिवेशन में गाँधीजी को कांग्रेस के कई नेताओं जैसे सर फिरोज़शाह मेहता, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, गोपाल कृष्ण गोखले आदि से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ।

गाँधीजी कांग्रेस की कार्य पद्धति से संतुष्ट नहीं थे। उन्होंने देखा कि उसके प्रतिनिधियों में एकता की कमी है। वे लोग अंग्रेज़ी बोली, वेशभूषा और तौर-तरीकों में पश्चिम की नकल तो करते थे, लेकिन कैंप में सफाई रखने की तरफ उनका कतई ध्यान नहीं था। गाँधीजी उन्हें सबक सिखाना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने शौचालय और स्नानघर की सफाई खुद ही शुरू कर दी। कोई उनकी मदद के लिए नहीं पहुंचा।

लोगों ने पूछा, "अछूत का काम आप क्यों कर रहे हैं?"

गाँधीजी ने उत्तर दिया, "क्योंकि जाति भाइयों ने इस जगह को ही अछूत बना दिया है।"

कलकत्ता से निकलकर गाँधीजी ने रेल द्वारा पूरे भारत की यात्रा शुरू कौ। जैसे-जैसे वह एक स्थान से दूसरे स्थान पर गए, उन्हें अपने देश के आम आदमी के बदहाल जीवन को देखकर खासा धक्का पहुंचा। जनता भूखी थी, अज्ञानी थी और उस पर कोई ध्यान नहीं दिया जा रहा था। गाँधीजी का हृदय निराशा से भर गया।

यात्रा से लौटकर गाँधीजी ने बंबई में वकालत शुरू की। कुछ ही समय में वहां वह आशा से अधिक अच्छा काम कर पाए।

दिसंबर 1902 की बात है। दक्षिण अफ्रीका से उन्हें एक तार मिला जिसमें निवेदन किया गया था कि वादे के मुताबिक वह लौट आएं। लंदन से उपनिवेश मंत्री जोसेफ चेंबरलैन नेटाल और ट्रांसवाल की यात्रा पर आ रहे थे और नेटाल की भारतीय कांग्रेस चाहती थी कि उनके सामने अपनी समस्याएं रखी जाएं।

9

गाँधीजी ने वचन का पालन किया। वह भारतीय शिष्टमंडल का नेतृत्व करने के लिए नेटाल पहुंच गए, लेकिन उपनिवेश मंत्री श्री चेंबरलैन ने उनका ठंडा स्वागत किया। भारतीय निराश हो गए। श्री चेंबरलैन नेटाल से ट्रांसवाल के लिए निकल गए। भारतीय लोगों ने चाहा कि गाँधीजी वहां पहुंचकर उनसे बात कर सकें।

बोअर युद्ध से पहले भारतीयों को ट्रांसवाल में प्रवेश करने की पूरी स्वतंत्रता थी, लेकिन उस समय प्रवेश के लिए नए बने एशियाटिक विभाग से अनुमति-पत्र लेना पड़ता था। यह नया कानून भारतीयों को अंग्रेज़ों से अलग रखने के लिए बनाया गया था। अनुमति-पत्र पाना भी कोई आसान काम तो था नहीं। एशियाटिक विभाग ने पूरी कोशिश की कि गाँधीजी किसी भी तरह ट्रांसवाल न जा पाएं, लेकिन अंत में उन्हें अनुमति देनी ही पड़ी। उन्हें अनुमति-पत्र मिल गया और वह प्रिटोरिया गए। परंतु उन्हें शिष्टमंडल का प्रतिनिधित्व करने और तैयार किए अपने ज्ञापन-पत्र को पेश करने की अनुमति नहीं दी गई।

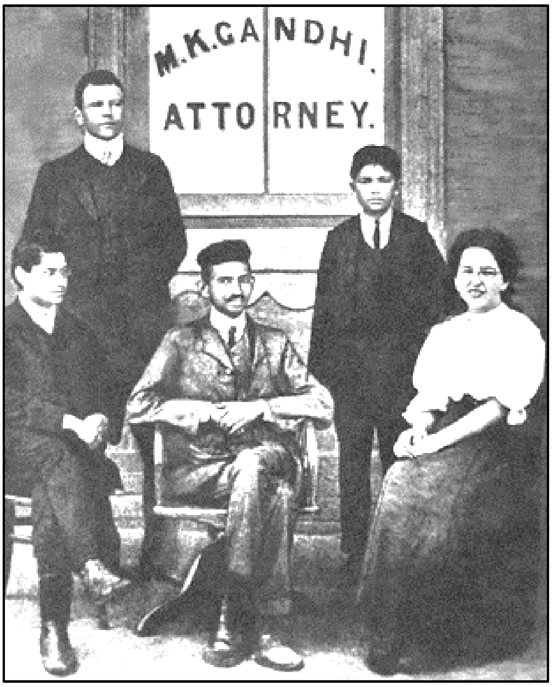

जोहान्सबर्ग में अपने सहयोगियों के साथ, १९०६

गाँधीजी ने अब यह तय कर लिया कि ट्रांसवाल में ही रहा जाए और रंगभेद की उस नीति से लड़ा जाए जो वहां दिनोंदिन बद-से-बदतर होती जा रही है। उन्होंने यह महसूस किया कि अब वह यह देश नहीं छोड़ पाएंगे जैसा कि वह चाहते थे। गाँधीजी वहां रहने लगे और अपने देशवासियों के लिए जो भी कर सकते थे, उसकी तैयारी करने लगे।

जोहान्सबर्ग के उच्च न्यायालय में उनका नाम दर्ज हो गया। उन्होंने एक मकान भी

किराये पर ले लिया और अपना दफ्तर खोल लिया । वकालत से उन्हें अच्छी कमाई होने लगी, परंतु वह हृदय से तो जन-सेवा में लगे थे। गाँधीजी ने सारी सुख-सुविधाओं का त्याग कर दिया था। वह अपने भौतिक शरीर को अपने आध्यात्मिक व्यक्तित्व के अनुरूप ढालना चाहते थे। इसी समय उनके मित्र मदनजीत उनसे मिले और उन्होंने गाँधीजी के सामने प्रस्ताव रखा कि 'इंडियन ओपिनियन' (भारतीय विचार) नाम का एक समाचार-पत्र निकाला जाए। गाँधीजी को यह विचार अच्छा लगा। सन् 1904 में समाचार-पत्र शुरू कर दिया गया। मनसुख लाल नाज़र इसके संपादक थे। गाँधीजी ने बहुत उदारतापूर्वक अखबार के लिए अपनी कमाई में से भी रुपया देकर सहायता की। उन्होंने समाचार-पत्र का काम भी संभाला और संपादकीय स्तंभ भी लिखे। समाचार-पत्र गुजराती और अंग्रेज़ी में प्रति सप्ताह प्रकाशित होता था। उसमें गाँधीजी के आदर्शों की झलक दिखाई देती थी और भारतीय लोगों को उससे राजनीतिक शिक्षा भी मिलती थी। गाँधीजी ने उनकी असफलताओं और पूर्वाग्रहों पर बड़ी स्पष्टता से प्रहार किए। ‘इंडियन ओपिनियन’ के माध्यम से यूरोपीय जनता को भी दक्षिण अफ्रीकी भारतीय जो दिक्कतें उठा रहे थे, उनकी सही तस्वीर देखने को मिली।

सन् 1904 में बरसात के बाद जोहान्सबर्ग के निकट सोने की खदानों की एक बस्ती में प्लेग फैल गया। शीघ्र ही वह भारतीय घरों में भी फैलने लगा। गाँधीजी तत्काल वहां पहुंचे और रोकथाम के उपाय करने लगे। मित्रों की सहायता से उन्होंने एक कामचलाऊ अस्पताल बना लिया और बीमारों की देखभाल करने लगे।

उसी वर्ष एक और घटना हुई। गाँधीजी “दि क्रिटिक' के उप संपादक एच.एस.एल. पोलक से मिले। शीघ्र ही दोनों घनिष्ठ मित्र बन गए क्योंकि जीवन और जीवन-दर्शन के बारे में दोनों के विचार मिलते-जुलते थे। पोलक ने गाँधीजी को जॉन रस्किन की पुस्तक 'अनटू दिस लास्ट' भेंट की। अर्थशास्त्र विषय पर लिखी इस पुस्तक में बहुत सारे नए विचार थे। गाँधीजी उससे प्रभावित होने से बच न सके।

फिर गाँधीजी एक फार्म स्थापित करने के उपाय करने लगे जहां एक ऐसे संप्रदाय की स्थापना की जा सके जो भाईचारे की भावना में विश्वास रखता हो। उनके मित्रों ने इस योजना का उत्साहपूर्वक समर्थन किया।

डरबन के पास फीनिक्स नाम की एक जगह में लगभग एक हज़ार एकड़ ज़मीन लेकर फार्म खोला गया। प्रारंभ में छह परिवार वहां जाकर बसे। 'इंडियन ओपिनियन' का प्रेस कार्यालय भी फीनिक्स में बना लिया गया। किसी भी जाति के लोग वहां जाकर स्वतंत्रतापूर्वक रह सकते थे। वे या तो खेती कर सकते थे या समाचार-पत्र की प्रेस में काम कर सकते थे। परंतु स्वयं गाँधीजी फीनिक्स में बहुत कम समय रह पाए। उनका मुख्य कार्यालय जोहान्सबर्ग में था, जहां वह वकालत करते थे। उन्हें ऐसा लगा कि अब निकट भविष्य में भारत लौटना मुश्किल है। उन्होंने यह सोचकर कस्तूरबाई और अपने बच्चों को बुला भेजा। वे लोग शीघ्र ही उनके पास आ गए।

गाँधीजी को जब भी समय मिलता वह अपने तीनों बेटों को पढ़ाया करते। साथ ही वह भोजन की अपनी खुराक के साथ नए-नए प्रयोग भी करते रहे। गाँधीजी कहते, "मैं तो अपने शरीर का शासक होकर रहना चाहता हूं। भौतिक आवश्यकताओं से मुक्त होने के बाद ही मुझ पर आत्मा का शासन हो सकता है।"

कॉफी और चाय भी छोड़ दी गई। उसके बाद दूध भी। कभी-कभी उपवास भी रखते और केवल पानी पर निर्भर रहते। कस्तूरबाई यह सब शांतिपूर्वक देखती रहती। वह जानती थी कि ऐसे मामलों में पति से तर्क करना फिजूल है।

सन् 1906 में नेटाल में 'जुलू विद्रोह' शुरू हो गया। यह आंदोलन टैक्स लगाए जाने के खिलाफ था। जुलू लोग अपने अधिकारों के लिए लड़ रहे थे, परंतु गोरे चिढ़ गए और उन्होंने उन लोगों के खिलाफ युद्ध छेड़ दिया। गाँधीजी की सहानुभूति जुलू लोगों के साथ ही थी, लेकिन वे लोग ब्रिटिश शासन के खिलाफ लड़ रहे थे और गाँधीजी का विश्वास था कि ब्रिटिश साम्राज्य विश्व कल्याण के लिए है। अतः उन्होंने अंग्रेज़ों की सहायता करना अपना

कर्त्तव्य समझा और एक भारतीय सेवा दल की स्थापना करनी चाही। उन्हें इसकी स्वीकृति मिल गई। सेवा दल की स्थापना कर दी गई। उस दल में 24 लोग थे और वे छह सप्ताह तक जुलू घायलों की देखभाल और मरहम-पट्टी करते रहे।

गाँधीजी ने महसूस किया कि गोरे जुलू लोगों पर भारी टैक्स लगाने के लिए उतारू हैं और वे टैक्स नहीं देना चाहते। गोरे उनके हर विरोध को अपनी बर्बरता के दम पर कुचल देना चाहते हैं और अपनी ज़मीन पर काले लोगों को कोई भी नागरिक अधिकार देने को तैयार नहीं हैं। आखिरकार जुलू लोगों का विद्रोह समाप्त हुआ और गाँधीजी जोहान्सबर्ग लौट आए। जोहान्सबर्ग में भारतीय लोगों के हितों की देखभाल करने के लिए गाँधीजी की बड़ी ज़रूरत थी। वहां के गोरे निवासी भारतीयों को हर तरह से दबा रहे थे।

दक्षिण अफ्रीका में जुलू विद्रोह और बोअर युद्ध में गांधीजी को मिले पदक

10

अगस्त 1906 में ट्रांसवाल सरकार के द्वारा एक अध्यादेश जारी किया गया जिसके अनुसार सभी भारतीय पुरुष, स्त्री और बच्चे अपने नामों की रजिस्ट्री करवाएं। हर व्यक्ति प्रमाण-पत्र प्राप्त करे जिसमें उसका नाम-पत्ता लिखा हो और उसके अंगूठे का निशान लगा हो। अध्यादेश के अनुसार यह कार्ड प्रत्येक व्यक्ति को हमेशा अपने पास रखना होगा और मांगने पर दिखाना भी होगा। जिसके पास प्रमाण-पत्र नहीं होगा उस पर जुर्माना किया जा सकेगा, उसे सज़ा दी जा सकेगी और साथ ही देश से निकाला भी जा सकेगा। पुलिस को तो यह आदेश भी था कि वह लोगों के घरों में घुसकर प्रमाण-पत्र की जांच करे।

गाँधीजी ने अपने साथियों से कहा, "यह तो बड़ी ज़्यादती है। यदि हमने कायरों की तरह हथियार डाल दिए तो दक्षिण अफ्रीका में हमारा सर्वनाश हो जाएगा। यदि हमें यहां रहना है तो तत्काल कार्यवाही करनी चाहिए।"

भारतीय लोगों ने तय किया कि वे इस अपमानजनक कानून के सामने नहीं झुकेंगे। वे अवश्य लड़ेंगे। लेकिन लड़ें कैसे? गाँधीजी ने तब सत्याग्रह की आवश्यकता महसूस की। उन्होंने लोगों को बताया कि सत्याग्रह से उनका क्या आशय है। उन्होंने कहा कि सबसे पहले अहिंसा के लिए पूरी तरह तैयार होना पड़ेगा। अधिकारी लोग आंदोलन को दबा देने की भरसक कोशिश करेंगे। वे लोग हिंसा का सहारा भी ले सकते हैं। हमें गिरफ्तार कर सकते हैं, परंतु हमें इन अत्याचारों को बगैर किसी विरोध के सहना होगा।

गाँधीजी ने कहा, "सरकार के कानूनों का खाली उल्लंघन करने से कुछ नहीं होगा। तुम्हारे दिल में नफरत नहीं होनी चाहिए। तुम्हें हर तरह के भय से भी मुक्त होना पड़ेगा।"

सरकार ने भारतीय लोगों के अध्यादेश के विरोध पर कोई ध्यान नहीं दिया। उसने उस कानून पर अमल करना शुरू कर दिया। भारतीय लोगों ने इस 'काले कानून' का उल्लंघन करने का फैसला कर लिया। सैकड़ों भारतीय गिरफ्तार हुए, उन पर मुकदमा चलाया गया और वे जेल में भेज दिए गए। सबने जुर्म स्वीकार कर लिया और बचने की कोशिश किए

बिना जेल चले गए। इसके बाद गाँधीजी को भी बंद कर दिया गया। फिर एक दिन के लिए उन्हें जेल से बाहर लाया गया और जनरल स्मट्स से मिलने के लिए प्रिटोरिया भेज दिया गया।

स्मट्स ने कहा, "यह आंदोलन तुमने शुरू किया है। यह एकदम बंद हो जाना चाहिए। मैं भारत के लोगों को नापसंद नहीं करता, लेकिन उन्हें कानून का पालन तो करना ही पड़ेगा।"

गाँधीजी ने उत्तर दिया, "इस कानून के सामने झुकने की बजाए मैं मर जाना बेहतर समझूंगा। यह भारतीय लोगों को नीचा दिखाने के लिए है।"

आखिरकार वाद-विवाद के बाद वे एक समझौते पर पहुंचे। गाँधीजी ने वचन दिया कि अगर 'काला कानून' वापस ले लिया जाए और कैदियों को रिहा कर दिया जाए तो वह इस सत्याग्रह को वापस ले लेंगे। स्मट्स इसके लिए सहमत हो गए। शर्त यह थी कि भारतीय लोग इच्छा से अपने-अपने नाम दर्ज करवा लेंगे। इस समझौते के साथ ही वह विदा हुए।

जोहान्सबर्ग लौटकर गाँधीजी ने भारतीयों की एक सभा बुलाई। उन्होंने कहा, "हमें अब अपनी इच्छा से अपनी रजिस्ट्री करवा लेनी चाहिए। इससे यह साबित होगा कि हम गलत तरीके से एक भी भारतीय को ट्रांसवाल नहीं लाना चाहते। यह काम करके हम अपनी उदारवादिता का परिचय ही देंगे। इससे जनरल स्मट्स 'काले कानून' को वापस भी ले लेंगे।"

अधिकांश लोग सहमत हो गए। परंतु एक पठान 'मीर आलम' चिल्ला उठा, "गाँधीजी, आपने तो हमसे कहा था कि अंगुलियों के निशान केवल उन लोगों के ही लिए जाते हैं जो अपराधी होते हैं? आपने ही कहा था न कि इस 'काले कानून' का उल्लंघन करना चाहिए? आज वही सब बातें आपको ठीक कैसे लगने लगीं?"

दूसरे दिन सवेरे गाँधीजी अपने साथियों को साथ लेकर नामांकन कार्यालय की तरफ बढ़े, लेकिन रास्ते में ही मीर आलम ने भारी लाठी से उन पर प्रहार कर दिया। गाँधीजी बेहोश

होकर गिर पड़े। मीर आलम उन्हें तब तक पीटता रहा जब तक कि दूसरे मित्र उनकी सहायता के लिए आ नहीं गए। जब गाँधीजी को होश आया तो उन्होंने अपने आपको एक अंग्रेज़ आदमी के घर कोच पर लेटा हुआ पाया, जिसे वह जानते तक नहीं थे। बैठने की कोशिश करते हुए गाँधीजी ने कमज़ोर आवाज़ से कहा, "मीर आलम को दोष मत दो क्योंकि वह सब बातें नहीं समझता है।"

फिर उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया कि नामांकन कार्यालय से कोई आकर उनके अंगूठे का निशान ले जाए और प्रमाण-पत्र बना दे। इस तरह गाँधीजी ने वहां अपने नाम की रजिस्ट्री करवाई। कई भारतीय लोगों ने उन का अनुसरण किया और अपना नाम भी दर्ज करवा लिया।

लेकिन जनरल स्मट्स ने 'काला कानून' वापस नहीं लिया।

सरकार के इस रवैये से निराश होकर भारतीय लोगों ने उन आवेदनों को वापस कर देने के लिए कहा जिन्हें उन्होंने स्वेच्छा से भरा था। लेकिन ट्रांसवाल सरकार टस-से-मस न हुई।

गाँधीजी तब तक स्वस्थ हो चुके थे। उन्होंने चुनौती दी, "अगर एक निश्चित तारीख तक कानून वापस नहीं लिया गया, तो हम लोगों को जो प्रमाण-पत्र मिले हैं, उनकी होली जला दी जाएगी।"

दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रही के रूप में, १९१३

जब उन्हें लगा कि प्रशासन ने उनकी धमकी को भी अनसुना कर दिया है, तो गाँधीजी ने सत्याग्रह शुरू कर दिया। होली जलाई गई और उसमें लगभग दो हज़ार प्रमाण-पत्र आग के हवाले कर दिए गए। कई भारतीयों ने खुल्लम-खुल्ला ट्रांसवाल की सीमा पार की, जहां जाना कानूनन मना था। गाँधीजी और उनके साथी सत्याग्रह के समय कई बार जेल गए। जब गाँधीजी जेल से बाहर आए, तो भारतीय लोगों ने सभा की और तय किया कि एक

शिष्टमंडल इंग्लैंड भेजा जाए जो ब्रिटिश सरकार को दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों की सही स्थिति की जानकारी दे। गाँधीजी और हाज़ी हबीब से कहा गया कि वे दोनों लंदन जाएं और भारतीय लोगों की शिकायतें रखें। योजना के अनुसार वे गए भी, लेकिन उन्हें इस दिशा में कोई सफलता नहीं मिली। फिर वे इस दृढ़ निश्चय के साथ लौटे कि अंत तक संघर्ष करेंगे, चाहे यह अंत कितना ही बुरा क्यों न हो।

गाँधीजी ने अब वकालत का काम करना छोड़ दिया। उन्हें लगा कि वह उस कानून से कैसे अपनी जीविका कमा सकते हैं जिसका वह स्वयं विरोध करते हों।

11

एक अंग्रेज़ किसान हरमैन कैलनबैक फीनिक्स की शांत और सौहार्दपूर्ण जीवन पद्धति से बहुत प्रभावित हुआ। जोहान्सबर्ग के निकट एक नई कालोनी बनाने के लिए उसने अपना विशाल फार्म गाँधीजी को देने का प्रस्ताव रखा। कैलनबैक ने सुझाव दिया कि जो लोग सत्याग्रह में भाग लेने के कारण अपना धंधा और घर खो बैठे हैं, उन्हें यहां बसाया जाए।

सन् 1910 में नई कालोनी बन गई। महान रूसी लेखक के नाम पर इस कालोनी का नाम 'टॉलस्टाय फार्म' रखा गया। गाँधीजी टॉलस्टाय के बड़े प्रशंसक थे। उस कालोनी में राष्ट्रीयता, धर्म और रंग की दृष्टि से भिन्न-भिन प्रांतों के लोग एक ही परिवार के रूप में रहने लगे। वे लोग कठिन परिश्रम करते और अपने श्रम का फल मिल-बांटकर खाते। गाँधीजी अपना अधिकांश समय टॉलस्टाय फार्म पर ही बिताते थे। वह बच्चों को पढ़ाते थे। दूसरे रचनात्मक काम भी उन्होंने अपने ज़िम्मे ले रखे थे।

सरकार का रवैया बदलने के लिए जनरल स्मट्स को राज़ी करने का गाँधीजी का प्रयत्न असफल हो चुका था, लेकिन 'काले कानून' और 'व्यक्ति-कर' के खिलाफ उनका संघर्ष चलता रहा। कस्तूरबाई और कई भारतीय महिलाएं भी इस आंदोलन में भाग लेने लगीं।

उन्हीं दिनों दक्षिण अफ्रीका के एक न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि भारतीय विवाह कानून की दृष्टि से मान्य नहीं है। पारिवारिक संबंधों पर किया गया यह प्रहार महिलाओं से सहन नहीं हुआ। उन्होंने खुलेआम इस कानून की अवहेलना की। बड़ी संख्या में महिलाओं को जेल भेज दिया गया। नेटाल में न्यू कैसल के पास कोयले की खदानों में भारतीय मज़दूरों ने भी इस दमनकारी फरमान के खिलाफ हड़ताल कर दी।

गिरफ्तारियों, सत्याग्रहियों के देश-निकाले और भारतीय परिवारों की अनकही तकलीफों ने हिन्दुस्तान में लोगों को क्रोधित कर दिया। पीड़ितों की सहायतार्थ बहुत-सी धनराशि एकत्र की गई।

कई सत्याग्रहियों को पीटा गया, उन पर डंडे चलाए गए। उनमें से कुछ मर भी गए। जनता के इस अपमान का गाँधीजी के मन पर गहरा असर हुआ। उन्होंने आत्म-पीड़ा में तीन प्रतिज्ञाएं कीं। जब तक व्यक्ति-कर हटा नहीं लिया जाएगा और यह क्रूर अन्याय समाप्त नहीं होगा, वह नंगे पैर चलेंगे, गरीब मज़दूरों के कपड़े पहनेंगे और दिन में एक ही बार भोजन करेंगे।

गाँधीजी ने देखा कि सरकार निष्ठुर है और भारतीयों की समस्याओं के हल तलाशने को लेकर गंभीर नहीं है, तो उन्हें अगला कदम उठाने के बारे में सोचना पड़ा।

अक्तूबर 1913 में गाँधीजी ने नेटाल खदान क्षेत्र के 6000 मज़दूरों द्वारा ट्रांसवाल में मार्च करने का कार्यक्रम बनाया। जबकि कानून यह था कि भारतीय लोग बगैर अनुमति-पत्र के ट्रांसवाल में घुस नहीं सकते।

गाँधीजी ने कहा, "हम लोग सीमा पार करके ट्रांसवाल में शांतिपूर्वक प्रयाण करने के लिए बढ़ रहे हैं। सरकार हमें गिरफ्तार करेगी और जेल में बंद कर देगी, लेकिन हमें शांत बने रहना है। इस अहिंसक तरीके से हम व्यक्ति-कर, हमारे विवाहों को मान्यता नहीं देने के निर्णण और हमारे विरुद्ध बनाए गए सभी कानूनों के खिलाफ अपना विरोध प्रकट कर रहे हैं। हम लोग एक नेक काम के लिए लड़ रहे हैं। हम किसी को नुकसान नहीं पहुंचाएंगे।"

फिर गाँधीजी ने लोगों से ऊंची आवाज़ में पूछा, "क्या आप लोग गिरफ्तार होने, कठोर व्यवहार को सहन करने और हमेशा अहिंसक बने रहने के लिए तैयार हैं?"

जन समूह में समर्थन का शोर गूंजा। सभी सहमत थे। वे लोग हर तरह गाँधीजी का अनुसरण करने के लिए तैयार थे। इस तरह ट्रांसवाल में प्रवेश की शुरुआत हुई। फिर सांझ ढले बहुत सारे वर्दीधारी लोग आए और उन्होंने गाँधीजी को नींद से जगा दिया।

गाँधीजी बड़ी सहजता के साथ बोले, " मुझे मालूम है। आप लोग मुझे गिरफ्तार करने आए हैं। मैं तैयार हूं।"

गाँधीजी और उनके कई अनुयायी गिरफ्तार कर लिए गए। खदानों को कांटेवाले तार से घेर दिया गया और एक कामचलाऊ कैदखाना बना दिया गया। सत्याग्रहियों को पीटा गया। उन पर लाठियां चलाई गईं और उन्हें काम पर जाने के लिए मजबूर किया गया, लेकिन अंग्रेज़ों को सफलता नहीं मिली। अधिकारीगण उन्हें काम पर भेजने में सफल नहीं हो सके। गाँधीजी ने उनमें शांतिपूर्वक ढंग से विरोध करने की भावना भर दी थी। ।

जल्द ही पूरे नेटाल और ट्रांसवाल में गाँधीजी का सत्याग्रह आंदोलन फैल गया। सरकार समझ नहीं पा रही थी कि अब उसे कया करना चाहिए क्योंकि उनके निष्ठुर दमन के सामने कोई भी आंदोलनकारी झुका नहीं। सारे जेलखाने भर गए। आखिरकार जनरल स्मट्स को कुछ करना ही पड़ा। उसने सारी स्थिति के अध्ययन के लिए एक आयोग बना दिया।

कस्तूरबाई के साथ, दक्षिण अफ्रीका में, १९१३

दिसंबर 1913 में गाँधीजी को रिहा कर दिया गया, लेकिन वह संघर्ष समाप्त करने वाले नहीं थे। गाँधीजी ने स्मट्स को चेतावनी दी कि यदि उनकी मांगें पूरी नहीं की गईं तो वह दूसरा मार्च निकालने की तैयारी कर देंगे। परंतु दूसरी बार वैसा करने की ज़रूरत नहीं पड़ी। रेलवे के यूरोपवासी केंद्रीय कर्मचारियों ने हड़ताल कर दी और सरकार की हालत बहुत खराब हो गई। गाँधीजी ने उन संगीन हालातों में मार्च निकालने का विचार छोड़ दिया क्योंकि वह शासन के लिए संकट को और नहीं बढ़ाना चाहते थे। गाँधीजी ने सभी आंदोलकारी मजदूरों को सलाह दी कि कम-से-कम उस समय के लिए वे लोग काम पर चले जाएं।

उनके इस निर्णय का सरकार पर अच्छा प्रभाव पड़ा और जनरल स्मट्स ने भी इस शालीनता को सराहा।

भारतीय नेताओं द्वारा जितने भी आवश्यक सुधारों की मांग की गई थी उनके पक्ष में जांच आयोग ने अपना विवरण दिया। आखिरकार 'भारतीय राहत विधेयक' पास कर दिया गया और गवर्नर ने उस पर हस्ताक्षर भी कर दिए। इसके द्वारा अनुबंध पर आए मज़दूरों पर लगा व्यक्ति-कर समाप्त कर दिया गया। सारे भारतीय विवाहों को कानूनी मान्यता प्राप्त हो गई और एक राज्य से दूसरे राज्य में आने-जाने पर किया जाने वाला जुर्माना भी पूरी तरह से हटा दिया गया। गाँधीजी जीत गए और यह उनके सत्याग्रह आंदोलन की विजय थी। इक्कीस वर्षों तक दक्षिण अफ्रीका में रहकर गाँधीजी ने भारतीय जनता के उत्थान के लिए निरंतर कार्य किए।

12

गाँधीजी को लगा कि दक्षिण अफ्रीका में उनका काम समाप्त हो गया है। उन्होंने भारत लौटने का मन बनाया। उस समय गोपाल कृष्ण गोखले इंग्लैंड में थे। वह चाहते थे कि गाँधीजी भारत लौटने से पहले उनसे लंदन में मिल लें। गाँधीजी भी यही चाहते थे। वह कस्तूरबाई से बोले, "हम लंदन चल रहे हैं। वहां से फिर हम लोग भारत के लिए रवाना हो जाएंगे।"

18 जुलाई 1914 को गाँधीजी कस्तूरबाई और कैलनबैक के साथ इंग्लैंड के लिए जहाज़ पर चढ़े। उनके लंदन पहुंचने के दो दिन पहले, 4 अगस्त को पहला विश्व युद्ध घोषित हो चुका था। वहां पहुंचने पर गाँधीजी को मालूम हुआ कि गोखले अपने स्वास्थ्य सुधार के लिए पेरिस पहुंच चुके हैं। युद्ध के कारण लंदन और पेरिस के बीच डाक-तार व्यवस्था भंग हो गई थी। गाँधीजी निराश हुए। वह गोखले से मिले बिना भारत नहीं लौटना चाहते थे। इसलिए वह लंदन में ही रुके रहे।

विश्व युद्ध जारी था। वैसे इस स्थिति में गाँधीजी इंग्लैंड में क्या कर सकते थे? कुछ भारतीय मित्रों के सुझाव पर इंग्लैंडवासी भारतीयों की एक सभा बुलाई गई। गाँधीजी ने सभा में विचार प्रकट किए कि इंग्लैंड में रहने वाले भारतीय लोगों को भी युद्ध के समय कुछ करना चाहिए। अंग्रेज़ छात्र अपनी इच्छा से सेना में भर्ती होने के लिए तैयार होते जा रहे थे। ऐसी स्थिति में भारतीय लोगों को भी उनसे कुछ कम नहीं करना चाहिए था।

गाँधीजी के विचारों पर लोगों में मतभेद था। बहुत से भारतीय यह सोचते थे कि युद्ध के कारण एक अवसर प्राप्त हुआ है कि भारत को आज़ादी मिल सके। भारतीयों को अपनी बात पर ज़ोर देकर अपने अधिकारों के लिए दावा करना चाहिए। लेकिन गाँधीजी यह सोचते थे कि इंग्लैंड अगर मुसीबत में है तो हमें अवसर का गलत लाभ नहीं उठाना चाहिए। उन्होंने ज़ोर दिया कि हम इंग्लैंड को हर संभव सहायता दें। उन्होंने घायलों के लिए सेवा

दल की स्थापना की जिसने अनेक कठिनाईयों के बावजूद ब्रिटिश लोगों को आवश्यकता के समय सहायता पहुंचाई।

कुछ समय बाद गोखले इंग्लैंड लौट आए। गाँधीजी और कैलनबैक उनसे कई बार मिलने गए। युद्ध और दूसरे मामलों के बारे में चर्चाएं हुईं।

गाँधीजी को प्लूरिसी का रोग हो गया, तो गोखले और उनके मित्र चिंतित हो उठे। डाक्टर जीवराज मेहता ने उनका इलाज किया, लेकिन कुछ लाभ नहीं हुआ। गोखले जब भारत लौटे, तब भी गाँधीजी बीमार ही थे। बीमारी बढ़ती ही गई। गाँधीजी को सलाह दी गई कि जल्दी-से-जल्दी वह भारत लौट जाएं। उन्होंने सुझाव मान लिया और भारत लौट आए।

13

बारह वर्षों के बाद गाँधीजी भारत लौटे थे। बंबई में उनका भव्य स्वागत किया गया। जनता का ऐसा अगाध प्रेम देखकर गाँधीजी विभोर हो गए। गोखले पूना (अब पुणे) में थे और उनकी हालत फिर खराब थी, इसलिए गाँधीजी उन्हें देखने पूना गए। वह उनसे बहुत स्नेह से मिले। गाँधीजी ने गोखले से कहा कि वह एक आश्रम खोलना चाहते हैं जिसमें वह फीनिक्स परिवार के लोगों के साथ रह सकें। वे लोग भारत आ गए थे और शांति निकेतन में ठहरे थे। गोखले ने उनकी योजना का समर्थन किया और कहा कि जो भी सहायता वह कर सकते हैं, अवश्य करेंगे।

गाँधीजी अपने परिवार के लोगों से मिलने राजकोट और पोरबंदर गए। उसके बाद शांति निकेतन चले गए। अध्यापकों और छात्रों ने उनका हार्दिक स्वागत किया। गाँधीजी वहां पहली बार रवीन्द्रनाथ टैगोर से मिले। उनकी मुलाकात सी.एफ. एन्ड्रूज़ से भी हुई जो उन दिनों वहां आए हुए थे।

वहीं गाँधीजी को खबर मिली कि गोखले का स्वर्गवास हो गया है। वह तत्काल पूना पहुंचे। बर्दवान तक सी.एफ. एन्ड्रूज़ भी साथ आए थे। एन्ड्रूज़ ने गाँधीजी से पूछा, “क्या आप सोचते हैं कि भारत में सत्याग्रह के अनुकूल अवसर बनेंगे? अगर हां, तो कब तक?”

गाँधीजी ने उत्तर दिया, “यह कहना कठिन है। एक साल तक तो मैं कुछ नहीं करूंगा। श्री गोखले ने मुझसे वचन लिया था कि मैं सालभर तक भारत-भ्रमण करूं और अनुभव प्राप्त करूँ। तब तक मैं कोई विचार प्रकट नहीं करूंगा जब तक कि एक साल का यह परीक्षा-काल समाप्त नहीं हो जाता। इसलिए मुझे नहीं लगता कि पांच वर्ष से पहले सत्याग्रह के लिए कोई अवसर दिखाई देगा।”

गोखले के श्राद्ध समारोह के बाद गाँधीजी सर्वेन्ट्स ऑफ इंडिया सोसायटी के नेताओं से मिले। गोखले के प्रति अपार श्रद्धा के कारण वह इस संस्था में सम्मिलित हो गए होते, लेकिन उसके सदस्यों में से कुछ ने उनका विरोध किया।

अहमदाबाद के एक स्वागत समारोह में कस्तूरबाई और अपने बच्चों के साथ, १९१५

कुछ समय के लिए गाँधीजी रंगून (अब यंगून) गए और वहां से लौटने पर कुंभ मेले के अवसर पर वह हरिद्वार पहुंचे। लगभग सत्रह लाख लोग मेले में आए हुए थे। विभिन्न सेवा दल श्रद्धालुओं की सेवा के लिए आमंत्रित थे। गाँधीजी को सेवा दल के लोगों की सहायतार्थ उनके फीनिक्स परिवार सहित निमंत्रण दिया गया था। फीनिक्स परिवार वहां पहुंचा और वह उसमें सम्मिलित हो गए।

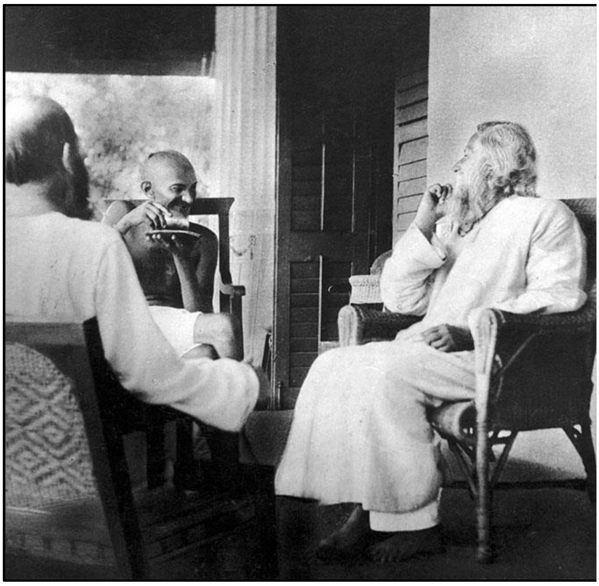

रवीन्द्रनाथ टैगोर और सी.एफ. एंड्रूज के साथ, १९२५

ऐसे धार्मिक मेले की अनेक घटनाओं और कमियों के कारण गाँधीजी को दुख हुआ। वहां भ्रष्टाचार था, धोखाधड़ी थी और कई असामाजिक बुराइयां भी थीं। सफाई की ओर नाममात्र का ही ध्यान दिया जाता था। गाँधीजी उदास हो गए। वह इस समस्या के बारे में बहुत कुछ सोचते रहे कि भारतीय चरित्र को कैसे सुधारा जाए।

मई 1915 में अहमदाबाद के पास एक गांव में एक आश्रम की स्थापना की गई। प्राचीन शहर अहमदाबाद हथकरघा उद्योग के लिए प्रसिद्ध है। गाँधीजी ने इस जगह को इसलिए ठीक समझा क्योंकि चरखे के घरेलू उद्योग का वहां फिर से विकास किया जा सकता था। गाँधीजी ने इस जगह को नाम दिया 'सत्याग्रह आश्रम'।

दक्षिण अफ्रीका से लौटने के बाद कस्तूरबाई के साथ १९१५

गाँधीजी का कहना था, "सत्य के प्रति निष्ठा होना हमारा मूल सिद्धांत है और हमारा कर्म है – सत्य की खोज करना और सर्वत्र उसकी स्थापना करना।"

आश्रम में रहने वाले सभी लोग एक जैसे सादे कपड़े पहनते थे। वे एक ही रसोईघर में खाना खाते और संयुक्त परिवार की तरह जीवन बिताते थे।

गाँधीजी ने आश्रमवासियों से कहा, "यदि आप जनता की सेवा करना चाहते हैं तो आपको सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय (चोरी नहीं करना), अपरिग्रह (संग्रह नहीं करना) और अस्वाद का संकल्प लेना होगा।"

एक दिन उन्होंने कहा, "मुझे एक अछूत परिवार का पत्र मिला है जो हमारे साथ रहना चाहता है। मैं उत्तर दे रहा हूं कि यहां उसका स्वागत है।"

गाँधीजी के इस निर्णय से खासा हंगामा मच गया। एक अछूत के साथ रहना ! कस्तूरबाई तक इस बात से सहमत नहीं हुईं। गाँधीजी तय कर चुके थे और कोई भी आश्रमवासी उस

बात का विरोध नहीं कर सकता था, परंतु आश्रम के संरक्षकों को यह बात बिलकुल पसंद नहीं आई और उन्होंने सत्याग्रह आश्रम को आर्थिक सहायता देनी बंद कर दी।

अब आश्रम के सामने आर्थिक संकट आ गया, लेकिन अनायास ऐसी सहायता मिल गई जिसकी कोई आशा नहीं थी। एक धनी आश्रम में आया और गाँधीजी को 13,000 रुपए दे गया। उस व्यक्ति के इस दान से सभी आश्चर्यचकित रह गए थे।

14

फरवरी 1916 में गाँधीजी को बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के शिलान्यास के अवसर पर भाषण देने के लिए बुलाया गया। वायसराय और दूसरे कई महत्त्वपूर्ण व्यक्ति वहां उपस्थित थे।

लंबा काठियावाड़ी कोट और पगड़ी पहने गाँधीजी भाषण देने के लिए खड़े हुए। पुलिस का इंतज़ाम और आस-पास की शान-शौकत देखकर गाँधीजी सकते में पड़ गए। श्रोताओं की तरफ देखकर वह बोले, "मैं खुलेआम अपने विचार बिना किसी संकोच के आपके सामने रखना चाहता हूं।"

उनके ये प्रारंभिक शब्द सुनकर ही श्रोता स्तब्ध रह गए।

उन्होंने कहा, "यह हमारे लिए गहरे अपमान और लज्जा की बात है कि मैं इस महान महाविद्यालय और पवित्र नगर के बीच अपने देशवासियों से एक ऐसी भाषा में बोलने के लिए विवश हूं जो कि मेरे लिए विदेशी है।"

यह एक तरह का विस्फोट था। कोई भी अंग्रेज़ी भाषा के खिलाफ बोलने का साहस नहीं कर पाता था। वहां उपस्थित ब्रिटिश अधिकारी, उनके मित्र और अन्य प्रतिष्ठित भारतीय लोग गुस्से में गहरी सांसें छोड़ने लगे। लेकिन गाँधीजी बोलते चले गए, "महामहिम सम्राट ने कल हमारे समारोह की अध्यक्षता करते समय देश के गरीबों के बारे में कुछ कहा था, पर हम यह क्या देख रहे हैं? तड़क-भड़कवाला माहौल, हीरे ज़ेवरातों का प्रदर्शन? भारत के लिए आज़ादी पाना तब तक असंभव है जब तक कि आप लोग इन हीरे-ज़ेवरातों से मुक्ति नहीं पा लेते और केवल देशवासियों की थाती के रूप में ही इन्हें अपने पास नहीं रखते।"

गाँधीजी ने अपने लंबे भाषण में कई बातों की चर्चा की। उनका भाषण तीखी आलोचनाओं से भरा था। समारोह के संयोजकों में से एक थीं श्रीमती एनी बीसेंट। वह घबरा गईं और

उन्होंने गाँधीजी को बैठ जाने के लिए कहा, लेकिन वह बोलते ही चले गए। कुछ लोग क्रोध से तमतमा उठे, तो कुछ बड़े चाव से गाँधीजी की बात सुनते रहे। वे लोग सोचने लगे, ‘कोई तो है जो सच बोल रहा है। यह आदमी भारत को अन्याय और अत्याचार के दलदल से बाहर निकाल सकता है।‘

प्रसन्नता प्रकट करते हुए उन लोगों ने बार-बार हर्ष-ध्वनि की।

गाँधीजी ने उनकी तरफ देखकर कहा, “भाषणों से हम स्वराज के योग्य नहीं हो सकते। हमारा चरित्र ही हमें उसके योग्य बनाएगा।”

गाँधीजी ने लोगों से यह भी कहा कि वे इस योग्य बनने की कोशिश करें कि अपना शासन खुद चला सकें। युद्ध-काल में अंग्रेज़ों की तीन-तीन बार सहायता करने वाले गाँधीजी ने अंत में कहा, “यदि मुझे ज़रूरी लगता है कि भारत की मुक्ति के लिए अंग्रेज़ हट जाएं या हटा दिए जाएं, तो मैं यह कहने में कतई संकोच नहीं करूंगा कि उन्हें एक दिन चले जाना होगा। मैं आशा करता हूं कि अपने इन शब्दों का पालन करने के लिए मैं मरने तक को तैयार रहूंगा।”

जनता गाँधीजी की इस स्पष्टवादिता से चकित रह गई। वह गाँधीजी का पहला महान राजनीतिक भाषण था। वर्षों बाद जवाहरलाल नेहरू ने इस बात पर प्रकाश डाला कि गाँधीजी के आने का लोगों के लिए क्या अर्थ था। नेहरूजी ने कहा, “हमें ऐसा लग रहा था कि जैसे किसी सर्वशक्तिशाली दैत्य की जकड़ में फंसकर हम असहाय हो गए हैं, हमारे हाथ-पैरों को तो जैसे लकवा मार गया है, हमारे दिमाग जैसे संज्ञा-शून्य हो गए हैं। हम कर ही क्या सकते थे? दरिद्रता और पराजय के दलदल में हमारा देश अंदर-ही-अंदर धंसता चला जा रहा था।”

अपने वक्तव्य को आगे जारी रखते हुए उन्होंने कहा, “और तब गाँधीजी का आगमन हुआ। वह आए खुली हवा के झोंके की तरह जिसने हमें बाहर खींच लिया और खुली व गहरी सांसें लेने का अवसर दिया। वह प्रकाश-पुंज की तरह आए कि जिसने हमारी आंखों पर

बंधी पट्टियां उतार दीं। वह एक बवंडर की तरह आए कि उससे बहुत कुछ अस्त-व्यस्त हो गया और जनता के सोचने का ढंग ही बदल गया...।"

सन् 1916 के आखिरी महीनों में भारत में होम रूल के लिए कई सभाएं हुईं। बाल गंगाधर तिलक, श्रीमती बीसेंट और जिन्ना के नेतृत्व में एक नई राजनीतिक लहर आ गई।

उस वर्ष कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन लखनऊ में दिसंबर में हुआ। कांग्रेस विभाजित होती जा रही थी। कुछ लोग गरम दल के थे, तो कुछ नरम दल के। फिर भी लखनऊ का वार्षिक कांग्रेस अधिवेशन बिना किसी तनाव के संपन्न हो गया।

तत्कालीन कांग्रेस अध्यक्ष श्री अंबिकाचरण मजुमदार ने भी स्वराज के पक्ष में वही कहा जो पहले के नेता कह चुके थे। ब्रिटिश सम्राट की सरकार को संबोधित करते हुए एक प्रस्ताव पास किया गया। उसमें अपील की गई कि भारत को स्वराज देने के लिए निश्चित कदम उठाए जाएं। इसके लिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने जो योजना तैयार की है उसमें सुझाए गए सुधारों को स्वीकार किया जाए। इस योजना पर अखिल भारतीय मुस्लिम लीग ने भी स्वीकृति दे दी थी। इस लखनऊ में कांग्रेस और लीग में एक समझौता हुआ। यह बाद में 'लखनऊ पैक्ट' के नाम से भी प्रसिद्ध हुआ। भारत की एकता के लिए मुसलमानों की बहुत-सी मांगों को कांग्रेस ने स्वीकार कर लिया।

दो साल तक गाँधीजी ने देशभर में खूब यात्राएं कीं और विभिन्न जगहों पर लोगों से चर्चाएं कीं। अब वह मज़दूरों से जुड़े मुद्दों पर काम करना चाहते थे। पहले उनका ध्यान गिरमिट प्रथा की समस्या की ओर गया। इस प्रथा के अनुसार गरीब और अनपढ़ मज़दूरों को बहला-फुसलाकर ब्रिटिश राज के दूसरे उपनिवेशों में भेज दिया जाता था। इसके खिलाफ गाँधीजी दक्षिण अफ्रीका में भी लड़ चुके थे और अब वह चाहते थे कि यह प्रथा पूरी तरह से समाप्त ही कर दी जाए।

वायसराय लार्ड हार्डिंग ने घोषणा कर दी कि वक्त आने पर ब्रिटिश सरकार इस प्रथा को समाप्त कर देगी। लेकिन गाँधीजी निश्चित तारीख चाहते थे। उन्होंने एक बड़ा आंदोलन

शुरू कर दिया। वह बंबई गए और सभी भारतीय नेताओं से मिलकर सलाह-मशविरा किया। उन्होंने इस प्रथा को समाप्त कर देने के लिए 31 मई 1917 तक की समय सीमा तय कर दी। इसके लिए समर्थन प्राप्त करने गाँधीजी यात्राओं पर निकल पड़े। महत्त्वपूर्ण स्थानों पर सभाएं की गईं। हर जगह उन्हें प्रोत्साहन मिला। स्वयं गाँधीजी ने कहा कि उन्हें इतना अधिक समर्थन पाने की आशा नहीं थी। इस आंदोलन के फलस्वरूप ब्रिटिश शासन ने इस प्रथा को 31 जुलाई 1917 तक समाप्त कर देने का आश्वासन दिया।

दार्जिलिंग में सी.आर. दास के साथ, १९२५

15

गाँधीजी ने बिहार के खेतीहर मज़दूरों पर थोपी गई एक घृणित प्रणाली के बारे में सुना। बिहार के चंपारण ज़िले में किसानों को गोरे ज़बर्दस्ती नील की खेती करने को मजबूर करते थे। इससे उन्हें बहुत तकलीफ उठानी पड़ती थी। न वे अपनी ज़रूरत का अनाज पैदा कर पाते थे और न ही नील की खेती करने के बदले उन्हें पर्याप्त धन मिल पाता था।

गाँधीजी को पहले इसके बारे में कोई जानकारी नहीं थी। बिहार का एक किसान राजकुमार शुक्ल गाँधीजी से मिला और उसने चंपारण के लोगों की तकलीफों के बारे में उन्हें बताया। उसने निवेदन किया कि वह खुद वहां जाकर स्थिति को देखें। गाँधीजी उस समय लखनऊ में कांग्रेस की बैठक में भाग ले रहे थे और उनके पास इतना समय नहीं था कि वहां जा सकें, लेकिन शुक्ल उनके पीछे पड़ा रहा। आखिरकार गाँधीजी ने कलकत्ता से लौटने के बाद वहां पहुंचने का वादा किया।

सन् 1917 के प्रारंभ में गाँधीजी चंपारण गए। उनके वहां पहुंचने पर ज़िलाधिकारी ने उन्हें एक नोटिस दिया कि वह चंपारण में नहीं ठहर सकते और जो भी पहली ट्रेन मिल रही हो, वह उससे वापस लौट जाएं। गाँधीजी ने इस आज्ञा को नहीं माना। उन्हें अदालत में उपस्थित होने का आदेश दिया गया। निर्धारित तारीख को गाँधीजी न्यायालय में पेश हुए।

न्यायाधीश ने कहा, "अगर आप इस ज़िले से चले जाएं और यहां कभी न आने का वचन दें, तो आप पर से मुकदमा उठाया जा सकता है।"

गाँधीजी ने उत्तर दिया, "यह नहीं हो सकता। मैं यहां जनता और राष्ट्र की सेवा के लिए आया हूं। चंपारण को मैं अपना घर समझूंगा और यहां के दलित किसानों के लिए काम करूंगा।"

न्यायालय के बाहर किसानों की एक बड़ी भीड़ खड़ी नारे लगा रही थी। न्यायाधीश और पुलिस दोनों के होश गुम थे।

गाँधीजी ने कहा, “यदि आप मुझे इन लोगों से बात करने दें तो उससे आपको शांति स्थापित करने में सहायता मिलेगी।”

गाँधीजी भीड़ के सामने आए और बोले, “आप लोग शांत रहकर मुझमें और मेरे काम में निष्ठा रखिए। न्यायाधीश को मुझे गिरफ्तार करने का अधिकार है क्योंकि मैंने उनकी आज्ञा का उल्लंघन किया है। अगर मुझे जेल भी भेज दिया जाए, तो उसे भी उचित समझिए | हमें शांतिपूर्वक काम करना है। किसी भी हिंसक कार्यवाही से हमारे उद्देश्य पर आंच आएगी।”

गाँधीजी के इतना कहते ही लोग शांतिपूर्वक लौट गए। गाँधीजी न्यायालय में वापस आए तो पुलिस ने उनकी तरफ प्रशंसा की दृष्टि से देखा। गाँधीजी पर से मुकदमा वापस ले लिया गया और उन्हें ज़िले में रहने की अनुमति भी दे दी गई। किसानों की परेशानियां जानने के लिए गाँधीजी वहां ठहरे।

गाँधीजी कई गांवों में गए। उन्होंने करीब 8000 किसानों से सवाल-जवाब किए और उनकी शिकायतों पर विचार-विमर्श किया। इस प्रकार वह उनकी तकलीफों और उनके कारणों को ठीक-ठीक समझ पाए। गाँधीजी इस निर्णय पर पहुंचे कि अंग्रेज़ काश्तकार जो किसानों को दबा लेते हैं, उसका सबसे बड़ा कारण है उनकी अज्ञानता। इसके लिए गाँधीजी ने ऐसे ऐच्छिक संगठन बनाए जो किसानों की आर्थिक और शिक्षा संबंधी स्थिति को सुधारने में मदद कर सकें। उन संगठनों द्वारा स्कूल खोले गए और लोगों को सफाई के बारे में भी शिक्षा दी गई।

सरकार ने गाँधीजी की शक्ति और अपने उद्देश्य के प्रति उनकी लगन को पहचान लिया। किसानों की शिकायतों को दूर करने के लिए सरकार ने स्वयं एक आयोग का गठन किया। गाँधीजी को उस आयोग में शामिल होने का निमंत्रण दिया गया और वह तैयार भी हो गए | गाँधीजी के प्रयासों के परिणामस्वरूप कुछ महीनों बाद ही ‘चंपारण भूमि सुधार विधेयक' पास हो गया। इससे किसानों और जोतदारों को काफी राहत मिली।

गाँधीजी बिहार में अधिक समय नहीं ठहर पाए। अहमदाबाद में मज़दूरों में अशांति फैली हुई थी और उनके झगड़ों को सुलझाने के लिए वहां उनकी आवश्यकता थी।

16

गाँधीजी शीघ्र ही अहमदाबाद लौट गए। मज़दूरों के झगड़ों को हाथ में लेने से पहले गाँधीजी अपने आश्रम को बदलना चाहते थे। सत्याग्रह आश्रम के आस-पास की जगह साफ-सथुरी नहीं थी और वहां प्लेग भी फैल गया था। यह महामारी अहमदाबाद में पहले से ही फैली हुई थी।

आश्रम के निकट रहने वाले अहमदाबाद के एक धनी ने उपयुक्त ज़मीन खरीदने की इच्छा जताई। गाँधीजी स्वयं ज़मीन की खोज में गए और साबरमती केंद्रीय कारागार के पास साबरमती नदी के किनारे एक बड़ी-सी जगह पसंद की गई। वह ज़मीन खरीद ली गई और वहां हुई 'साबरमती आश्रम' की स्थापना, जो आगे चलकर काफी विख्यात हुआ।

अहमदाबाद में कपड़ों की कई मिलें थीं। कीमतें बढ़ चुकी थीं और मिल मज़दूर अधिक वेतन की मांग कर रहे थे। मिल मालिक मजदूरों की शर्तों के लिए तैयार नहीं थे। गाँधीजी ने मज़दूरों के साथ सहानुभूति दिखाई। उन्होंने संघर्ष शुरू कर दिया और शांतिपूर्वक विरोध प्रदर्शन किया। मज़दूरों ने गाँधीजी का अनुसरण किया और उन्हें अपना पूरा समर्थन दिया। बड़े-बड़े झंडे लेकर वे सड़कों पर परेड करते और कहते कि वे तब तक काम पर नहीं जाएंगे जब तक कि झगड़ा सुलझ नहीं जाता।

कई दिन बीत गए। मिल मालिक ज़िद पर उतर आए। भूखे हड़ताली मज़दूर अधीर होने लगे थे। उनमें अनुशासन टूटने लगा। गाँधीजी ने महसूस किया कि कहीं मज़दूर अपनी प्रतिज्ञा तोड़कर काम पर न चले जाएं। यह उस आंदोलन की बहुत बड़ी नैतिक हार होगी।

एक सुबह उन्होंने मज़दूरों को बुलाया और कहा, "जब तक सारे मज़दूर एकजुट नहीं हो जाते और समझौता होने तक हड़ताल में डटे नहीं रहते, तब तक मैं खाने को छुऊंगा भी नहीं।"

सभी मज़दूर अचंभित रह गए और कहने लगे, "आप नहीं, बल्कि हम उपवास करेंगे। हमारी ढिलाई के लिए हमें क्षमा करें, अब हम अपनी प्रतिज्ञा पर कायम रहेंगे।"

गाँधीजी नहीं चाहते थे कि कोई और उपवास करे। उनका उपवास मिल मालिकों के खिलाफ नहीं था, लेकिन मज़दूरों के बीच एकता और सहयोग की कमी के खिलाफ था। उपवास केवल तीन दिन चला, लेकिन इससे मिल मालिक इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने मज़दूरों के साथ समझौता कर लिया। मिल मज़दूरों की हड़ताल समाप्त हुई ही थी कि गाँधीजी को खेड़ा सत्याग्रह के संघर्ष में जुट जाना पड़ा।

गुजरात में खेड़ा ज़िला फसल खराब हो जाने के कारण अकाल की कगार पर था। फसल इतनी कम हुई थी कि किसान, खासकर गरीब तबके के किसान लगान देने में असमर्थ थे, लेकिन सरकार का कहना था कि किसानों को लगान तो चुकाना ही पड़ेगा।

गाँधीजी को किसानों की बात में संगति दिखाई दी और उन्होंने लगान न चुका कर सत्याग्रह करने की सलाह दी। वल्लभभाई पटेल, शंकरलाल बैंकर, महादेव देसाई और दूसरे कई नेताओं ने इस संघर्ष में रचनात्मक भाग लिया। इस आंदोलन का अंत ऐसा हुआ कि जिसकी आशा ही नहीं थी। ऐसे संकेत दिखाई देने लगे थे कि यह आंदोलन जल्द ही बिखर जाएगा। चार महीने के संघर्ष के बाद आखिरकार एक सम्मानजनक समझौता हो पाया। सरकार ने कहा कि अगर संपन्न किसान कर चुका दें, तो गरीब किसानों का लगान माफ कर दिया जाएगा। इस पर वे सहमत हो गए और आंदोलन समाप्त कर दिया गया।

खेड़ा सत्याग्रह, गुजरात के किसानों में जागृति का शुभारंभ था। यह आरंभ राजनीतिक शिक्षा का भी था। साथ ही शिक्षित जन-सेवकों को यह मौका भी मिला कि वे किसानों के वास्तविक जीवन को समझ सकें।

17

इस समय तक विश्व युद्ध संगीन स्थिति में पहुंच चुका था। ब्रिटेन और फ्रांस कठिन परिस्थितियों में फंस चुके थे। सन् 1917 के वसंत में जर्मनी ने फ्रांस में ब्रिटिश और फ्रांसीसी सेना को बुरी तरह हरा दिया था। रूस के युद्ध संबंधी सभी प्रयत्न बेकार हो गए थे और उसके सामने क्रांति का खतरा था। अमरीका युद्ध में शामिल तो हो गया था, लेकिन युद्ध भूमि में अभी तक उसका कोई भी सैनिक नहीं पहुंचा था।

भारत के वायसराय लार्ड चेम्सफोर्ड ने विभिन्न भारतीय नेताओं को युद्ध परिषद में भाग लेने के लिए निमंत्रित किया। गाँधीजी को भी बुलाया गया। उन्होंने निमंत्रण स्वीकार कर लिया और वह दिल्ली गए। गाँधीजी को इस बात से दुख हुआ कि तिलक और अली बंधुओं को उसमें नहीं बुलाया गया था। गाँधीजी जाने को तैयार भी न थे, लेकिन वायसराय से मिलने के बाद उन्होंने इस सम्मेलन में भाग लिया। वायसराय चाहते थे कि गाँधीजी सेना में भर्ती होने के प्रस्ताव का समर्थन करें।

गाँधीजी ने एक वाक्य कहा, “अपने उत्तरदायित्व को पूरी तरह समझते हुए मैं इस प्रस्ताव का समर्थन करता हूं।”

गाँधीजी के इस कथन ने सरकार के प्रस्ताव को स्वीकार करने का संकेत दिया था। गाँधीजी के इस फैसले से उनके कई साथी हैरान थे।

किसी ने कहा, “आप तो अहिंसा के पुजारी हैं फिर हमें हथियार उठाने के लिए क्यों कह रहे हैं?"

दूसरे लोग बोले, “इस सरकार ने भारत के लिए ऐसा क्या किया है कि वह हमसे सहयोग की अपेक्षा रखे?”

उनके बहुत से निकट के मित्र भी यह नहीं समझ पाए कि वह अपने अहिंसक आंदोलन के साथ युद्ध का तालमेल कैसे बिठा पाए हैं।

गाँधीजी अपने विश्वास पर अडिग रहे और बोले, "भारत के शिक्षित वर्ग की ओर से बगैर शर्त पूरे मन से सहयोग दिया जाना चाहिए। तभी हम अपने स्वराज के लक्ष्य तक पहुंच पाएंगे और किसी बात से नहीं।"

गाँधीजी ने निर्णय कर लिया था और वह अब उसे क्रियान्वित करे में जुट गए। सेना में भर्ती होने की उनकी अपील का शुरुआत में कोई संतोषजनक परिणाम नहीं निकला, लेकिन वह अपनी धुन पर अड़े रहे। उन्होंने सभाएं कीं। उन्होंने परचे बांटे। लगातार प्रयत्न का फल निकला। बहुत से लोग सेना में भर्ती हो गए। वह आशा करने लगे कि पहली टुकड़ी जैसे ही बाहर भेजी जाएगी और लोग भी भर्ती होंगे।

जन-कार्यों में जुटे गाँधीजी ने अपना स्वास्थ्य करीब-करीब चौपट कर लिया था। वह समय पर भोजन नहीं कर पाते थे और ऐसा आवश्यक पौष्टिक आहार भी नहीं ले पाते थे कि जिससे शरीर को शक्ति मिले। तभी उन्हें पेचिश का रोग हो गया। उन्होंने दवाई खाने से इंकार कर दिया। उनकी हालत बिगड़ती चली गई। मित्रों ने समझाने की कोशिश की, लेकिन वह किसी की भी सलाह को मानने के लिए तैयार नहीं थे। वह दिन-रात बेचैन रहने लगे और स्वयं उन्हें ऐसा लगा कि वह मृत्यु के निकट पहुंच रहे हैं।

उन्हें स्वस्थ होने में बहुत समय लग गया, लेकिन तब तक यह समाचार आ चुका था कि युद्ध समाप्त हो गया है। जर्मनी को एकदम परास्त कर दिया गया था। अब और लोगों के सेना में जाने की ज़रूरत नहीं थी।

मित्रों और डाक्टरों ने गाँधीजी को सलाह दी कि वह माहौल परिवर्तन के लिए कहीं चले जाएं और पहले स्वास्थ्य को ठीक हो लेने दें। वह माथेरान गए, लेकिन वह जगह उन्हें रास नहीं आई। वह पूना गए और वहां उन्होंने एक डाक्टर से सलाह ली। उसने स्वास्थ्य ठीक करने के लिए दूध पीने की सलाह दी और कुछ इंजेक्शन लेने के लिए भी कहा। गाँधीजी इंजेक्शन लगवाने के लिए तो तैयार हो गए, लेकिन दूध के लिए नहीं क्योंकि दूध तो वह कई वर्ष पहले ही छोड़ चुके थे।

कस्तूरबा ने कहा, "आपको गाय और भैंस के दूध से एतराज़ है, पर आप बकरी का दूध तो ले ही सकते हैं।"

डाक्टर ने कहा, "ठीक है, यदि आप बकरी का दूध लें तो वह भी उतना ही अच्छा रहेगा।"

तब गाँधीजी बकरी के दूध के लिए तैयार हो गए।

वह अहमदाबाद लौट आए। उनका स्वास्थ्य सुधर ही रहा था कि समाचार-पत्रों में उन्होंने रोलट कमेटी की रिपोर्ट पढ़ी। इसमें सिफारिश की गई थी कि फौजदारी कानून में संशोधन होंगे। इस बात से गाँधीजी विचलित हो उठे। उन्होंने कहा, "यह अन्याय है। स्वतंत्रता और न्याय के सिद्धांत पर कुठाराघात है। इससे व्यक्ति के मूलभूत अधिकारों का हनन होगा।"

मित्रगण गाँधीजी के पास सलाह के लिए पहुंचे। वे बोले, "कुछ किया जाना चाहिए। यदि रोलट कमेटी की ये सिफारिशें कानून का रूप लेती हैं तो हमें सत्याग्रह करना पड़ेगा।"

गाँधीजी को इस बात का काफी खेद था कि उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं है अन्यथा वह अकेले ही इन सुधारों के विरुद्ध लड़ाई छेड़ देते। बीमारी की हालत में ही बिस्तर पर से वह प्रस्तावित विधेयक की तानाशाही पर अखबारों में लेख लिखते रहे। उनके अनुसार आत्मसम्मान वाला कोई भी व्यक्ति इसके सामने नहीं झुक सकता।

गाँधीजी ने सोचा कि सरकार के खिलाफ सच्ची निष्ठा से सत्याग्रह आंदोलन छेड़ देना ही एकमात्र उपाय है। आश्रम में कुछ नेताओं की बैठक बुलाई गई और सत्याग्रह का प्रतिज्ञा-पत्र तैयार किया गया। वहां उपस्थित सभी लोगों ने उस पर हस्ताक्षर कर दिए। गाँधीजी को इस बात का विश्वास नहीं था कि अहिंसा जैसे महान अस्त्र का उपयोग अन्य संस्थाएं ठीक से कर सकेंगी। इसलिए उन्होंने 'सत्याग्रह सभा' के नाम से एक नई संस्था बनाई। उसका मुख्यालय बंबई में था।

रोलट कमेटी की विवादास्पद रिपोर्ट के विरुद्ध जगह-जगह उपद्रव हो रहे थे। सरकार किसी भी हाल में उसकी सिफारिशों को लागू करने पर तुली थी। सन् 1919 में रोलट

मद्रास दौरे में चक्रवर्ती राजगोपालचार्य के साथ, १९३७

विधेयक प्रस्तुत कर दिया गया। जब भारतीय विधान सभा में उस विधेयक पर चर्चा हो रही थी, गाँधीजी वहां दर्शक के रूप में उपस्थित थे। देशभर में चल रहे विरोध के बाद भी वह विधेयक कानून के रूप में पारित कर दिया गया।

गाँधीजी उस समय भी शरीर से कमज़ोर थे। तभी उन्हें मद्रास (अब चैन्नई) आने का निमंत्रण मिला। खतरा उठाकर भी वह महादेव देसाई के साथ वहां गए। वहां पहली बार गाँधीजी की मुलाकात चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य से हुई। वह उनसे बहुत प्रभावित हुए।

नेताओं की एक छोटी-सी बैठक हुई और गाँधीजी ने सभी को बताया कि रोलट विधेयक के पारित होने के क्या-क्या दुष्परिणाम होंगे। जब ये चर्चाएं चल रही थीं तभी रोलट विधेयक के कानून के रूप में प्रकाशित कर दिए जाने के समाचार प्राप्त हुए।

मद्रास में ही गाँधीजी के मन में यह विचार आया कि सत्याग्रह आंदोलन छेड़ने से पहले सारे भारत में हड़ताल की जानी चाहिए | नेताओं ने सुझाव को मान लिया और प्रस्तावित हड़ताल का खासा प्रचार किया गया। पहले तो इसके लिए 30 मार्च 1919 की तारीख तय की गई थी, लेकिन बाद में इसे बदलकर 6 अप्रैल कर दिया गया। लोगों को हड़ताल की सूचना बहुत कम समय पहले मिली थी, फिर भी वह खासी सफल रही।

स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए हुए संघर्षों में यह हड़ताल एक महान जागृति थी।

गाँधीजी मद्रास से रवाना हुए और 6 अप्रैल की हड़ताल में शामिल होने के लिए बंबई पहुंचे। तब तक दिल्ली, लाहौर और अमृतसर आदि शहरों में 30 मार्च को ही हड़ताल हो

चुकी थी। दिल्ली में पुलिस प्रशासन ने प्रदर्शनकारियों के स्वतंत्रतापूर्वक चलने-फिरने पर प्रतिबंध लगा दिया। वहां गोलियां चलीं और कई लोग हताहत हुए। गाँधीजी से निवेदन किया गया कि वह दिल्ली आएं। उन्होंने उत्तर दिया कि वह 6 अप्रैल को बंबई में हड़ताल हो जाने के बाद ही वहां आएंगे।

बंबई में हड़ताल को भारी समर्थन मिला। किसी भी फैक्टरी में एक चक्का तक नहीं चला। बाज़ार ठप्प पड़े रहे। पूरे भारत में हड़तालें चलती रहीं। गाँधीजी ने लोगों से बार-बार कहा कि वे शांति बनाए रखें और सरकार के दमन से उत्तेजित होकर हिंसा पर उतारू न हों। इसके बावजूद कई जगह हिंसा फूट पड़ी। अहमदाबाद और पंजाब में उपद्रव हुए। अहिंसा का प्रचार करने के लिए गाँधीजी इन जगहों पर जाना चाहते थे।

पंजाब जाते हुए पलवल नामक एक स्टेशन पर उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और वापस बंबई भेज दिया गया। उनकी गिरफ्तारी की खबर पूरी बंबई में आग की तरह फैल गई। अपार जन-समुदाय स्टेशन पर उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। बंबई पहुंचे तो उन्हें रिहा कर दिया गया। भीड़ अधीर हो रही थी।

एक मित्र ने गाँधीजी से कहा, "केवल आप ही भीड़ पर काबू पा सकते हैं। आइए, मैं आपको उस स्थान पर ले चलता हूं।"

भीड़ ने अपार प्रसन्नता से गाँधीजी का स्वागत किया। भारी जूलूस निकलने वाला था, लेकिन पुलिस ने उस पर प्रतिबंध लगाकर उसे आगे बढ़ने से रोक दिया। फिर घुड़सवारों की टुकड़ी उस भीड़ पर दौड़ा दी गई। जैसे ही घुड़सवार भाले तानकर भीड़ में घुसे, सारे वातावरण में बच्चों और महिलाओं की चीख-पुकार मच उठी। पुलिस के जुल्म से बचने के लिए लोग भागने लगे।

गाँधीजी स्तब्ध रह गए। वह कमिश्नर से मिलने गए | उन्होंने देखा कि वह गुस्से में आग बबूला हो रहे हैं, "लोगों पर आपके उपदेशों का क्या प्रभाव पड़ता है, यह आपसे हम पुलिसवाले बेहतर जानते हैं। यदि हमने सख्त कार्यवाही न की होती तो स्थिति नियंत्रण से

बाहर चली जाती। आपकी भावनाओं के बारे में हमें कोई संदेह नहीं, लेकिन जनता उसे नहीं समझती है। वह तो केवल अपनी प्रवृत्तियों के अनुसार ही व्यवहार करती है।"

गाँधीजी ने कहा, "जनता स्वभाव से हिंसक नहीं है, वह शांतिप्रिय है।"

"आप पंजाब जाना चाहते थे न?" कमिश्नर ने कहा, "क्या आप जानते हैं कि अहमदाबाद, पंजाब और दिल्ली में क्या हो रहा है? इन सारे उपद्रवों के लिए आप ज़िम्मेदार हैं।"

गाँधीजी को इन उपद्रवों के समाचारों से बड़ा सदमा पहुंचा। उन्होंने कहा कि वह निश्चित ही खुद को उत्तरदायी मान लेंगे, अगर वह इस बात से सहमत हो जाएं कि सारे उपद्रव उनके द्वारा ही शुरू किए गए हैं।

वह अहमदाबाद गए। रास्ते में उन्हें विस्तार से जानकारी मिली कि वहां क्या-क्या घटित हुआ है। अहमदाबाद में उन दिनों मार्शल लॉ लगा हुआ था। रेलवे स्टेशन पर एक पुलिस अधिकारी उनकी प्रतीक्षा कर रहा था कि उन्हें कमिश्नर साहब तक पहुंचा दे। यह कमिश्नर भी तमतमाया हुआ था। गाँधीजी ने उपद्रवों के लिए खेद प्रकट किया और शांति स्थापित करने में सहयोग देने का वचन दिया।

फिर गाँधीजी ने साबरमती आश्रम में एक सभा करने की अनुमति चाही। यह प्रस्ताव अधिकारी को पसंद आया। सभा में गाँधीजी ने दुख भरे हृदय से घोषणा की कि सविनय अवज्ञा आंदोलन समाप्त किया जा रहा है। प्रायश्चित के रूप में उन्होंने तीन दिन तक का उपवास रखने की बात कही और साथ ही सब लोगों से भी एक-एक दिन का उपवास रखने का आग्रह किया। उन्होंने कहा कि जिन लोगों ने उपद्रव में भाग लिया है वे अपना अपराध स्वीकार कर लें। उन्हें इस बात का दुख था कि लोगों को पूरा प्रशिक्षण दिए बिना ही सविनय अवज्ञा आंदोलन शुरू कर दिया गया।

गाँधीजी बोले, "मैंने भयंकर गलती की है।"

कई लोगों ने गाँधीजी के इस कथन पर व्यंग्य किए। उनके कई मित्र और अनुयायी सत्याग्रह बंद कर देने पर आपे से बाहर हो गए।

फिर गाँधीजी ने शिक्षा देनी शुरू की कि सत्याग्रह का सही अर्थ क्या है और उसको कैसे चलाया जाना चाहिए। अपने लेखों और भाषणों के माध्यम से वह इस सिद्धांत को समझाना चाहते थे।

18

पंजाब में हालात बहुत संगीन थे। यह सही है कि उपद्रव जनता के द्वार ही शुरू किया गया था, लेकिन उसे रोकने के लिए सरकार ने जिस तरह के उपायों का सहारा लिया था, वे उससे भी कहीं अधिक भयंकर थे। नेतागण कोशिश कर रहे थे कि लोग शांत रहें, परंतु अधिकारी लोग जिस तरह का कठोर दमन-चक्र चला रहे थे, उस तरह की बहुत कम घटनाएं इतिहास में पाई जाती हैं।

अमृतसर में लोगों को घूमने-फिरने की आज़ादी नहीं थी। एक घोषणा प्रकाशित करके सभा-सम्मेलनों पर प्रतिबंध लगा दिया गया था, लेकिन कम लोग ही इस घोषणा के बारे में जान पाए क्योंकि यह ऐलान सब जगह नहीं किया गया था और घोषणा केवल अंग्रेज़ी में प्रकाशित की गई थी।

तभी यह तय किया गया कि सरकार के दमन के खिलाफ विरोध प्रकट करने के लिए एक सभा 'जलियांवाला बाग' में आयोजित की जाए। जनरल डायर ने सभा को रोकने का कोई उपाय नहीं किया, लेकिन लोगों के वहां जमा होते ही वह वहां पहुंच गया और अपने साथ हथियारबंद सेना की टुकड़ी और गाड़ियां भी ले गया। वहां जमा भीड़ को बिना कोई चेतावनी दिए उसने आदेश दिया, "तब तक गोलियां चलाओ जब तक पूरा गोला-बारूद खत्म न हो जाए।"

वह बाग चारों तरफ से दीवारों और मकानों से घिरा हुआ था और बाहर निकलने के लिए उसमें एक ही दरवाज़ा था। पहली गोली के चलते ही बाहर जाने का रास्ता बंद हो गया। भीड़ के लिए बचने का कोई उपाय नहीं था। वहां करीब छह से दस हज़ार के बीच लोग जमा थे। सिपाहियों ने उस निहत्थी जनता पर सोलह हज़ार से अधिक गोलियां चलाईं। जो पहले एक खूबसूरत बाग था, वह निर्मम हत्याओं का वध-स्थल बन गया। सैकड़ों पुरुष, स्त्री और बच्चे भून डाले गए। हालांकि सरकारी आंकड़ों के अनुसार केवल 379 लोग मरे

और 200 लोग घायल हुए। घायलों और मृत लोगों को वहीं छोड़कर सेना की टुकड़ी लौट गई। जलियांवाला बाग एक तरह से जनसंहार का पर्यायवाची हो गया।

यह घटना तो भयानक थी ही, इसके अलावा भी पूरे पंजाब में कई शर्मनाक घटनाएं घटित हुईं। भारतीय लोगों को अपने हाथों और घुटनों के बल चलने का आदेश दिया गया। जनरल डायर ने कुछ स्थानों पर इस तरह के हुक्म भी दिए कि जब भी कोई अंग्रेज़ अफसर दिखाई दे भारतीय लोग अपने वाहन से उतर जाएं और उन्हें सलाम करें। यही नहीं, कुछ जगहों पर लोगों को नंगा करके पीटा भी गया। विद्यार्थियों और बच्चों को हाज़िरी देने, परेड में शामिल होने और ब्रिटिश झंडे को सलामी देने के लिए मीलों चलना पड़ता था। बारात में जा रहे लोगों के कपड़े उतरवाकर उन्हें पीटा गया। चिट्ठी-पत्री पर प्रतिबंध लगा दिया गया। भारतीय परिवारों के नल काट दिए गए और बिजली भी बंद कर दी गई। जनरल डायर के मार्शल लॉ ने पंजाब में भयंकर आतंक पैदा कर दिया था।

जलियांवाला बाग हत्याकांड ला दृश्य (स्वर्ण मंदिर, अमृतसर के पुस्तकालय से लिया गया एक चित्र)

सी.एफ. एंड्रूज़ पंजाब पहुंचे। उन्होंने गाँधीजी को पत्र लिखा कि वह तत्काल पंजाब आ जाएं। गाँधीजी वहां जाना चाहते थे, लेकिन सरकार उनकी प्रार्थना को बराबर अस्वीकृत

करती आ रही थी। आखिरकार अक्तूबर में वायसराय ने उन्हें पंजाब जाने की अनुमति दे दी।

लाहौर स्टेशन पहुंचने पर गाँधीजी ने देखा कि शहर की लगभग सारी जनता उनके आने की प्रतीक्षा में वहां उपस्थित थी।

कांग्रेस ने पंजाब में हुए अत्याचारों की जांच के लिए एक समिति नियुक्त की। लाहौर पहुंचने पर गाँधीजी से कहा गया कि वह भी उस समिति में शामिल हों। उन्होंने धीमे, लेकिन बहुत ही सुनियोजित तरीके से पंजाब में हुई घटनाओं की जांच-पड़ताल शुरू कर दी।

गाँधीजी को पंजाब और वहां की जनता को समझने का मौका मिला | लोग उन्हें घेर लेते थे। वे उन्हें प्यार करते थे, उनका सम्मान करते थे।

जवाहरलाल नेहरू उन दिनों पंजाब में ही थे। उन्होंने यह अनुभव किया कि गाँधीजी जन-जन के नेता हैं। लोग उनके विचारों और सिद्धांतों से प्रभावित होकर उनके पास खिंचे चले आते थे। नेहरू ने गाँधीजी द्वारा की जा रही जांच-पड़ताल में वैज्ञानिक सत्यता के दर्शन किए।

गाँधीजी ने अपनी जांच रिपोर्ट में विस्तार से बताया कि ब्रिटिश सरकार कुछ लोगों का बचाव करने का प्रयत्न कर रही है। गाँधीजी की इस बात में कोई रुचि नहीं थी कि वे किसी से बदला लें, लेकिन उस रिपोर्ट के छपने पर भी सरकार को चुप देखकर उन्हें बड़ा धक्का लगा।

पंजाब के लोगों के कष्ट गाँधीजी को विचलित कर रहे थे। वह जान चुके थे कि निहत्थे और मासूम लोगों पर कैसे-कैसे अत्याचार किए गए हैं। गाँधीजी ने लोगों को सलाह दी कि वे हर तरह से सरकार के साथ असहयोग करें। उन्होंने लोगों से कहा कि वे ब्रिटिश सरकार के द्वारा दिए जाने वाले खिताब स्वीकार न करें और जो पहले दिए गए हैं, उन्हें लौटा दें। गाँधीजी चाहते थे कि लोग न्यायालयों का भी बहिष्कार करें। उन्होंने जनता को विदेशी वस्तु न खरीदने की सलाह दी। वह देशवासियों को इस बात के लिए सहमत करने में कोई

भी कसर नहीं छोड़ना चाहते थे कि लोग किसी भी सरकारी पद पर कार्य न करें। उन्होंने लोगों को शिक्षा संस्थाओं से भी बाहर आ जाने को कहा।

भारत की जनता पर गाँधीजी का प्रभाव तेज़ी से बढ़ता जा रहा था। बहुत सारे वयोवृद्ध नेता अपनी उदारवादी नीतियों के कारण भारतीय राजनीति से अस्त होते जा रहे थे। सन् 1920 के अंत तक गाँधीजी देश के और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के एक अविवादास्पद नेता बन गए।

उन दिनों कांग्रेस इस बात के लिए लड़ रही थी कि तत्काल उन्हें होम रूल दे दिया जाए। सरकार के साथ उसका लड़ने का तरीका अहिंसात्मक असहयोग करने का था। समय-समय पर कुछ कानूनों की सावधानीपूर्वक अवज्ञा भी की जाती थी।

गाँधीजी जवाहरलाल नेहरू के समाजवादी दृष्टिकोण में बहुत रुचि लेते थे। किसानों के साथ अपने संपर्कों का जो ब्यौरा जवाहरलाल ने उन्हें दिया, उससे वह बहुत प्रभावित हुए। जवाहरलाल ने उन्हें बताया कि किसान कैसे-कैसे अत्याचार सहते हैं और उन्हें अपनी ही ज़मीन पर खेती के लिए कितना भारी कर चुकाना पड़ता है।

जवाहरलाल नेहरू और राजकुमारी अमृतकौर के साथ विचार-विमर्श करते हुए

भारत की राजनीतिक स्थिति दिन-पर-दिन खराब होती चली गई। शोषित जनता में एक तरह का तनाव व्याप्त था और हिंसक कार्यवाही फैलने का खतरा था। सरकार के ऐसे सख्त व्यवहार के बाद भी गाँधीजी को विश्वास था कि जल्द ही अंग्रेज़ों की हुकूमत अपनी गलती ठीक कर लेगी। जवाहरलाल का विचार था कि इंग्लैंड तब तक नहीं झुकेगा जब तक कि उसे झुकने के लिए विवश न कर दिया जाए। वास्तव में जवाहरलाल ठीक ही सोच रहे थे। उसके बाद सरकार ने नेताओं को गिरफ्तार करके जेल भेजना शुरू कर

दिया। अंग्रेज़ों को यह डर लगा कि कहीं उन्हें भारत पर से अपना अधिकार ही न खो देना पड़े।

1 अगस्त 1920 को गाँधीजी ने वायसराय लार्ड चेम्सफोर्ड को एक पत्र लिखा और उसमें असहयोग आंदोलन करने का संकेत दे दिया। इसके साथ ही उन्होंने 'केसर-ए-हिंद' नामक स्वर्ण पदक भी लौटा दिया जो कि उन्हें सन् 1915 में मिला था।

समाचार-पत्र 'यंग इंडिया' के स्तंभों में गाँधीजी ने अहिंसात्मक असहयोग के बारे में विस्तार से लिखा। जगह-जगह भाषण देते हुए और सत्याग्रह की विशेषताएं समझाते हुए उन्होंने अनेक नेताओं के साथ दूर-दूर तक यात्रा की। हर जगह उन्हें अपार जनसमुदाय का अगाध प्रेम और उत्साह मिला। बार-बार उन्होंने लोगों को हिंसा के खिलाफ चेतावनी दी। भीड़ के क्रोधोन्माद से उन्हें बड़ी घृणा थी।

जब 'गांधी टोपी' पहनी, १९२०

गाँधीजी कहते थे, "यदि भारत को हिंसा के माध्यम से आज़ादी लेनी है, तो फिर यह काम अनुशासित हिंसा यानी युद्ध के द्वारा ही किया जाना चाहिए।"

अगस्त के अंत में गुजरात के राजनीतिक परिषद् ने असहयोग आंदोलन का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। 4 से 9 सितंबर तक कलकत्ता में कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन हुआ। इसमें प्रस्तुत किए जाने के लिए असहयोग आंदोलन का प्रस्ताव स्वयं गाँधीजी ने तैयार किया था। वे नहीं जानते थे कि कांग्रेस अधिवेशन में उन्हें कितनी सफलता मिलेगी। जब उन्होंने प्रस्ताव रखा तो यह कहा गया कि अब तक जिस

नीति से काम किया जाता रहा है, यह प्रस्ताव उससे भिन्न है। वह यह भी जानते थे कि कई नेता उनके एकदम खिलाफ हैं।

अधिवेशन में गाँधीजी ने घोषणा की, "ईश्वर से डरते हुए और अपने कर्त्तव्य की भावना से प्रेरित होकर मैं यह प्रस्ताव आपकी स्वीकृति के लिए प्रस्तुत कर रहा हूं।"

उस विशेष अधिवेशन में असहयोग आंदोलन की योजना को स्वराज्य प्राप्त करने के साधन के रूप में स्वीकार कर लिया गया ।

सन् 1920 के आखिरी महीनों में गाँधीजी ने ब्रिटिश सरकार के तिहरे बायकाट की बात कही। उन्होंने सरकार और समस्त सरकारी संस्थाओं का बहिष्कार करने पर ज़ोर दिया। इनमें स्कूल-कॉलेज और न्यायालय भी शामिल थे। अगर जनता इनसे मुक्त हो जाए तो वह आसानी से अपने स्कूल, कॉलेज और न्यायालय खोल सकती है और इससे ब्रिटिश सत्ता धराशायी हो जाएगी।

सरकार के सहयोगियों और दूसरे सम्माननीय लोगों ने गाँधीजी के इस तरीके का खासा मज़ाक उड़ाया, लेकिन गाँधीजी ने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया। गाँधीजी की गतिविधियों से सरकार आतंकित हो उठी। अंग्रेज़ी प्रशासन ने चेतावनी दी कि जो भी कानून की सीमा से बाहर काम करेगा, उसे गिरफ्तार कर जेल भेजा जा सकता है।

गाँधीजी को लगा कि यह तो आंदोलन की सफलता के संकेत हैं। उन्होंने लोगों को इस बात के निर्देश दे दिए कि जब वह गिरफ्तार हो जाएं, तो उन्हें क्या करना चाहिए।

26 दिसंबर को कांग्रेस का अधिवेशन नागपुर में हुआ। इस अधिवेशन में गाँधीजी की नीतियों का विरोध भी किया गया, लेकिन उनका प्रस्ताव भारी बहुमत से स्वीकृत हो गया। नागपुर में नए कार्यक्रम की स्वीकृति जन आंदोलन की शुरुआत थी। गाँधीजी ने सोचा कि सारी सरकारी संस्थाओं का बहिष्कार करने से कांग्रेस को वैसी ही संस्थाएं गठित करने का अवसर मिल सकता है और इस तरह राज्य के अंदर राज्य बन सकेगा। | परिणामस्वरूप भारत स्वराज की तरफ बढ़ सकेगा।

श्रीमती ऐनी बीसेंट, श्रीनिवास शास्री और सत्यमूर्ति के साथ, १९२१

सन् 1921 में भारतीय जनता के आक्रोश को शांत करने ड्यूक ऑफ कनॉट भारत आए। वह देश में चार विधान सभाओं का उद्घाटन करने के उद्देश्य से भी आए थे। सम्राट की ओर से घोषित सुधारों के अंतर्गत ही इन विधान सभाओं का निर्माण हुआ था, लेकिन उनके आने से अंग्रेज़ों के प्रति भारतीय दृष्टिकोण में कोई ठोस परिवर्तन नहीं हुआ।

गाँधीजी दूर-दराज़ के इलाकों की यात्रा करते रहे। अहिंसा और असहयोग के आदर्शों का प्रचार करते रहे। दिनोंदिन जनता गाँधीजी के कार्यक्रमों पर अमल करने के लिए आतुर हो रही थी। अनेक विद्यार्थियों ने अपने स्कूल-कॉलेज छोड़ दिए। बहुत से अधिकारियों ने अपने पद त्याग दिए। विदेशी बहिष्कार आंदोलन चोटी पर पहुंच गया था। जनता का नैतिक साहस बढ़ता जा रहा था और सरकार का धैर्य डिगने लगा था। गाँधीजी ने लोगों को धीरज रखने की सलाह दी और अहिंसा का पालन करने पर ज़ोर दिया। उन्हें भारतीय जनता में दुर्बलता भी दिखाई दी और उन्होंने उसे दूर करने का सुझाव दिया। वह चाहते थे कि साथ-साथ सामाजिक सुधार और रचनात्मक कार्य भी किए जाते रहें।

उसी समय घोषणा हुई कि प्रिंस ऑफ वेल्स भारत यात्रा करेंगे। कई जगह कार्यक्रम आयोजित किए गए कि वह अपनी वफादार प्रजा से भेंट कर सकें।

गाँधीजी ने जब समाचार-पत्रों में खबर पढ़ी तो वह भड़क उठे।

उन्होंने कहा, "क्या अंग्रेज़ सरकार यह समझती है कि हम बच्चे हैं, क्या वे इस बात में विश्वास करते हैं कि युवराज के लिए की जाने वाली स्वागत परेडों से हम पूरे पंजाब में

प्रशासन द्वारा किए गए बर्बर अत्याचारों और स्वराज देने में किए जाने वाले विलंब को भूल जाएंगे?"

"हमें महामहिम युवराज से कोई शिकायत नहीं है," गाँधीजी ने कहा, "लेकिन वह क्रूरता के प्रतीक हैं और इसी वजह से हम उनका विरोध करते हैं। हम सारी दुनिया को दिखा देंगे कि हमारा असहयोग आंदोलन यूरोपीय सिद्धांतों के ठीक विपरीत है। हम लोग प्राचीन ऋषियों के अनुसार आचरण कर रहे हैं। यह बिना हिंसा के असहयोगी वीर लोगों की लड़ाई है।"

इस बात के डर से कि महामहिम युवराज की यात्रा के समय अव्यवस्था न फैल जाए, अंग्रेज़ सरकार का कठोर दमन-चक्र फिर से शुरू हो गया। हज़ारों लोगों को गिरफ्तार कर लिया गया। भारतीय जनता इतनी नाराज़ हो उठी कि नगर-नगर में होली जलाई गई। यह होली विदेशी और खासकर ब्रिटिश कपड़ों और सामानों की थी।

17 नवंबर 1921 को युवराज बंबई पहुंचे। ब्रिटेन के स्वामीभकत प्रतिनिधि शाही मेहमान की अगवानी करने गए। अहिंसात्मक असहयोग करने वालों ने कोई दखल नहीं दिया। फिर भी सहसा आवेश भड़क उठा। धार्मिक और राजनैतिक घृणा ने इसे और प्रज्ज्वलित कर दिया। दंगे शुरू हो गए। बहुत से लोग मारे गए, कई संपत्तियां नष्ट हो गईं। शहर में आतंक छा गया। गाँधीजी बंबई में ही थे। वह दंगे वाली जगह जा पहुंचे कि उपद्रव समाप्त हो जाए। बड़ी मुश्किलों से शांति स्थापित हो पाई।

गाँधीजी ने कड़वे शब्दों में कहा, "हर आदमी को अपने धर्म और अपनी राजनीतिक विचारधारा को मानने का अधिकार है। सत्याग्रह तब तक सफल नहीं हो सकता, जब तक हम इस बात को समझ नहीं लेंगे।"

दूसरे शहरों में युवराज के आने का शांतिपूर्वक बहिष्कार किया गया। अभागे युवराज शहर-पर-शहर देखे जा रहे थे, लेकिन उनका स्वागत कर रही थीं खाली सड़कें। एक दुकान तक नहीं खुली थी। लोग घर के दरवाज़े बंद किए रहे और बाहर नहीं आए। ऐसे

हालात देखकर ब्रिटिश सरकार क्रोधित हो उठी। उसने भारत सरकार से इसके खिलाफ कार्यवाही करने को कहा।

फलस्वरूप मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू और दूसरे नेता गिरफ्तार कर लिए गए और अलग-अलग अवधि के लिए सबको जेल भेज दिया गया, लेकिन जनता का अटल साहस रत्ती भर कम नहीं हुआ। वे स्वराज प्राप्त करने के लिए हर कष्ट सहने को तैयार थे।

गाँधीजी से यह मांग की गई कि वह स्वराज की प्राप्ति के लिए जन आंदोलन शुरू करें। गाँधीजी ने निश्चय कर लिया। बारडोली में सत्याग्रह शुरू करने की तैयारी कर ली गई।

उधर उत्तर प्रदेश में गोरखपुर के नज़दीक स्थित गांव चौरी चौरा में सरकार के खिलाफ प्रदर्शन कर रही एक भीड़ पर पुलिस ने गोली चला दी। इससे प्रदर्शनकारियों को इतना गुस्सा आया कि वे उत्तेजित हो उठे। पुलिस को सिटी हाल में शरण लेनी पड़ी। भीड़ ने उस हाल को घेर लिया और उसे आग लगा दी। कुछ सिपाही जलकर मर गए। जो भागने की कोशिश कर रहे थे, वे बाहर खड़ी भड़की जनता द्वारा मार डाले गए।

इससे गाँधीजी बहुत विचलित हो उठे। उन्हें लगा कि लोग निश्चित ही अभी तक सत्याग्रह के लिए तैयार नहीं हुए हैं। उन्होंने बारडोली से शुरू होने वाला सत्याग्रह स्थगित कर दिया। उनके साथी इससे सहमत नहीं थे, लेकिन गाँधीजी अपनी बात पर दृढ़ रहे। वह चाहते थे कि उनके अनुयायी रचनात्मक कामों में लग जाएं। गाँधीजी के इस निर्णय से देशवासी दुखी हुए। वे सोच रहे थे कि स्वराज अब पहुंच के भीतर ही है और आंदोलन जारी रहना चाहिए।

सरकार तो जैसे अवसर की प्रतीक्षा कर रही थी। जन आंदोलन को रोक देने के लिए गाँधीजी को धन्यवाद देने के बदले, उन पर राज्यद्रोह का आरोप लगाया गया और उन्हें छह वर्ष की सज़ा सुना दी गई। गाँधीजी को पूना के यरवदा केंद्रीय कारागार में भेज दिया गया।

19

जेल में गाँधीजी कताई, लेखन और चिंतन में व्यस्त रहने लगे। जनता को बड़ी निराशा हुई। सरकार ने हर जगह अपनी पकड़ मज़बूत कर ली थी। लगभग सभी नेता जेल में बंद कर दिए गए।

फिर 1924 में गाँधीजी बीमार पड़ गए। उन्हें अपेंडिसाइटिस का रोग हो गया था। वह असहनीय पीड़ा झेल रहे थे। सरकार सतर्क हो गई। अगर गाँधीजी को जेल में कुछ हो गया, तो क्या होगा? तत्काल ऑपरेशन कराया गया जो सफल हो गया, लेकिन उनका स्वास्थ्य बहुत धीमी गति से सुधर रहा था। सरकार ने उचित समझा कि उन्हें छोड़ दिया जाए। गाँधीजी रिहा कर दिए गए। फिर स्वास्थ्य सुधार के लिए वह बंबई के पास जुहू चले गए।

असहयोग आंदोलन ठंडा पड़ चुका था। कई कांग्रेसी नेता नगरपालिका और प्रांतीय कौंसिलों में भाग लेने की बात सोचने लगे थे जबकि गाँधीजी ने इनका बहिष्कार करने के लिए कहा था। लेकिन गाँधीजी न तो निराश हुए और न ही उन्होंने साहस खोया। उन्होंने कुछ समय के लिए राजनीति छोड़ देने का फैसला कर लिया। अब वह हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित करने और छुआछूत मिटाने में लग गए।

करीब छह वर्ष तक गाँधीजी ने राजनीतिक क्षेत्र में कुछ नहीं किया, लेकिन वह लिखते रहे, भाषण देते रहे और प्रार्थना करते रहे। देशभर के अलग-अलग इलाकों में प्रवास किया। अंग्रेज़ों के प्रति अहिंसक विरोध का विचार गाँधीजी ने छोड़ा नहीं था। वह तो उपयुक्त समय की प्रतीक्षा कर रहे थे। कई यात्राओं में गाँधीजी के साथ जवाहरलाल भी रहे। दोनों राष्ट्रीय नेताओं का हर जगह उत्साह से स्वागत किया गया।

सन् 1928 में वायसराय ने गाँधीजी को मिलने के लिए बुलाया। उन्होंने गाँधीजी को बताया कि ब्रिटिश सरकार ने सर जॉन साइमन की देखरेख में एक कमीशन की नियुक्ति की है।

यह कमीशन भारत की स्थिति का अध्ययन करेगा और सुझाव देगा कि यहां किस तरह के राजनीतिक सुधार किए जाने चाहिए।

गाँधीजी ने पूछा, "क्या उस कमीशन में कोई भारतीय भी होगा?"

"नहीं," वायसराय ने उत्तर दिया।

"फिर तो यह एकदम फिजूल है," गाँधीजी ने कहा, "हमें इसका बायकाट करना चाहिए।"

गाँधीजी ने लोगों को सलाह दी कि साइमन कमीशन का बहिष्कार किया जाए। जब कमीशन के लोग बंबई पहुंचे, तो पूरे भारत में हड़ताल की गई थी। जब कमीशन के लोग देश के दूसरे शहरों की यात्रा कर रहे थे, तो काले झंडों के साथ प्रदर्शन किए गए।

लोगों ने नारे लगाए, "साइमन लौट जाओ।"

भीड़ को भगाने के लिए कई जगह लाठियां और गोलियां चलाई गईं।

उन्हीं दिनों गुजरात में बारडोली के किसान भूमि कर बढ़ा दिए जाने से विक्षुब्ध हो रहे थे। गाँधीजी ने उनकी शिकायतों का अध्ययन किया और सलाह दी कि वे सत्याग्रह का सहारा लें और कर न चुकाएं।

"लेकिन अहिंसक बने रहना ज़रूरी है," उन्होंने कहा। वल्लभभाई पटेल ने उस आंदोलन को अपने हाथों में ले लिया।

ब्रिटिश सरकार ने जनता को फिर आतंकित करने के पुराने तरीकों का प्रयोग करना शुरू किया, लेकिन बाद में उसे झुकना पड़ा। शिकायतों की जांच की आज्ञा दी गई। वल्लभभाई ने कुछ रियायतें मांगी। गाँधीजी जब बारडोली पहुंचे तो सलाह-मशविरा जारी था। कुछ समय बाद ही सरकार ने उनकी शर्तें मान लीं और समझौता हो गया।

राजनीतिक हलचलों ने फिर ज़ोर पकड़ना शुरू किया। हर जगह लोग जन संघर्ष की तैयारी कर रहे थे।

वायसराय ने देश के नेताओं की एक बैठक बुलाई। यह घोषणा की गई कि भारत को कनाडा जैसा स्वायत्त शासन दे दिया जाएगा। गाँधीजी ने चाहा कि संविधान बनाने की योजना के लिए तत्काल कदम उठाए जाएं।

"अरे भले आदमी," वायसराय ने कहा, "ऐसे वादे करने का मुझे कोई अधिकार नहीं है।"

सभी नेताओं को लगा कि इंग्लैंड में बैठे सत्ताधारी टाल-मटोल कर रहे हैं। सत्ता सौंप देने का उनका कोई इरादा नहीं है।

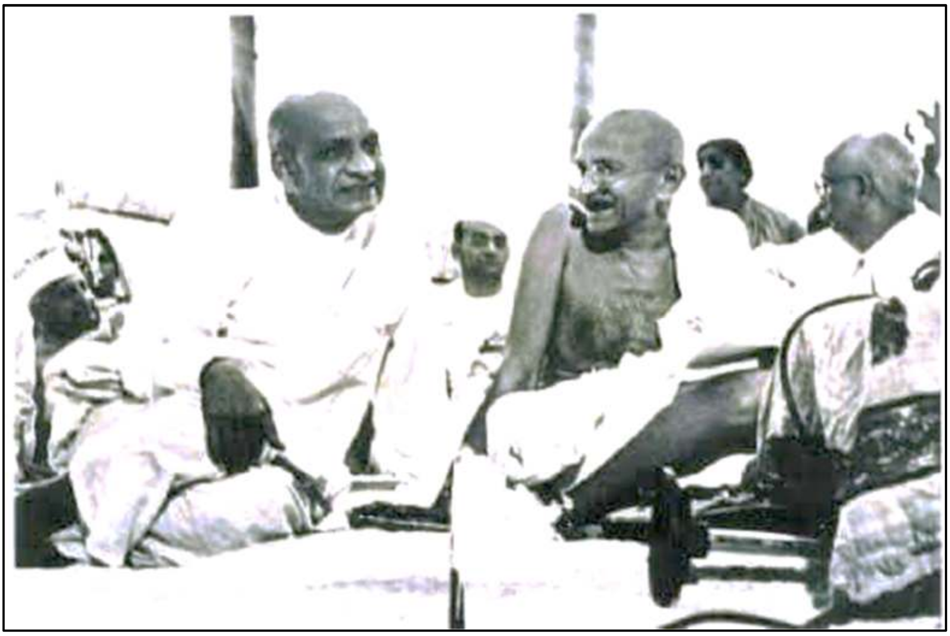

सरदार पटेल के साथ

20

जनता के मन में यह बात अब घर कर चुकी थी कि कुछ करने के लिए सरकार को मजबूर करना ही पड़ेगा।

गाँधीजी के प्रस्ताव पर जवाहरलाल नेहरू कांग्रेस के अध्यक्ष चुन लिए गए। 31 दिसंबर 1929 को लाहौर में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। वहां यह प्रस्ताव पास किया गया कि पूर्ण स्वतंत्रता भारत का लक्ष्य है। स्वायत्त शासन पाने में असफल होकर भारत ने अब पूर्ण स्वराज की मांग की। सारा देश जाग उठा। हर आदमी गाँधीजी के नेतृत्व की राह देख रहा था। दो महीने बाद गाँधीजी ने नमक सत्याग्रह की घोषणा कर दी।

यह सविनय अवज्ञा आंदोलन का प्रारंभ था, जिसके द्वारा सरकार के कानूनों का उल्लंघन किया जाना था। सविनय अवज्ञा आंदोलन की शुरुआत होनी थी नमक कानून के उल्लंघन से।

नेहरूजी ने कहा, "अचानक 'नमक' एक सनसनीखेज़ शब्द बन गया। और तो और नमक अब शक्ति का द्योतक कहलाया जाने लगा।"

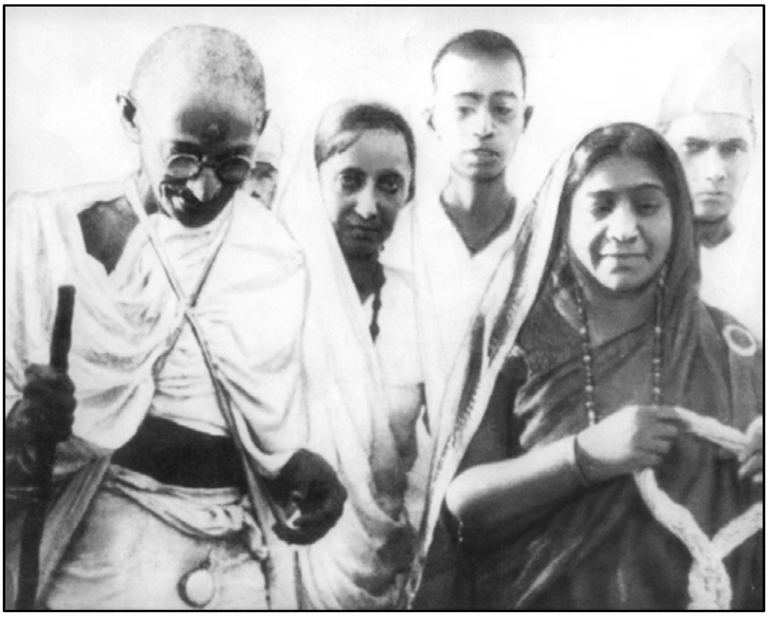

नमक सत्याग्रह के दौरान डांडी में सरोजिनी नायडू के साथ

सरकार ने नमक पर 'आबकारी कर' लगा दिया, जिससे राजस्व खजाने में बेशुमार रुपया आने लगा। सरकार के पास नमक बनाने का एकाधिकार भी था। 'नमक कर' पर वार किया जाना था और

कठोर नमक कानून को तोड़ना था। गाँधीजी की इस सहजता ने जिसमें कि उन्होंने नमक को आंदोलन के लिए चुना, इसने स्थिति को नाटकीय रंग दे दिया था।

गाँधीजी ने 2 मार्च 1930 को नए ब्रिटिश वायसराय लार्ड इरविन को अंग्रेज़ों के राज में भारत की खेदजनक दशा के बारे में एक लंबा-चौड़ा पत्र लिखा |

उन्होंने कहा, "अंग्रेज़ों ने हमारा लगातार शोषण किया है। सैनिक और नागरिक प्रशासन की खर्चीली व्यवस्था को हमारे ऊपर लादा गया है। लाखों लोग कंगाल हो चुके हैं। इससे हम राजनीतिक रूप से खरीदे हुए गुलाम बन गए हैं। इसने हमारी संस्कृति की जड़ें तक खोखली कर दी हैं।"

उन्होंने वायसराय इरविन से निवेदन किया कि वह उनसे मिलें और व्यक्तिगत रूप से सारी स्थिति पर चर्चा करें।

"लेकिन अगर आप इन बुराइयों को दूर करने के उपाय नहीं खोजते," गाँधीजी ने कहा, "और मेरे पत्र का आपके हृदय पर कोई असर नहीं पड़ता, तो इस महीने की 11 तारीख को मैं आश्रम के अपने उन लोगों के साथ नमक कानून तोड़ने जाऊंगा...मैं जानता हूं और यह आपके हाथ में है कि मुझे गिरफ्तार करके आप मेरी योजना पर पानी फेर दें, लेकिन मुझे आशा है कि मेरे बाद उस काम को आगे बढ़ाने वाले हज़ारों-लाखों लोग होंगे, जो अनुशासनबद्ध तरीके से इस आंदोलन को जारी रखेंगे।"

लार्ड इरविन ने इस पत्र का कोई औपचारिक उत्तर नहीं दिया, लेकिन अपने सचिव से यह कहलवा भेजा कि उन्हें इस बात का खेद है कि गाँधीजी ने ऐसा रास्ता चुना है जिसमें देश के कानून को तोड़ने और शांति को खतरा पहुंचने की संभावना है।

गाँधीजी के नमक सत्याग्रह से पूरा भारत आंदोलित हो उठा। 12 मार्च को सवेरे साढ़े छह बजे हज़ारों लोगों ने देखा कि गाँधीजी आश्रम के 78 स्वयंसेवकों सहित डांडी की यात्रा पर निकल पड़े हैं। डांडी वहां से 241 मील दूर समुद्र किनारे बसा एक गांव है।

यह घोषणा कर दी गई कि नमक कानून का उल्लंघन किया जाएगा। गाँधीजी एक गांव के बाद दूसरे गांव, दूसरे गांव से तीसरे गांव को पार करते रहे। वह हर जगह रुकते, किसानों से बातें करते और उन्हें समाज सुधार का महत्त्व समझाते।

वह समुद्र की तरफ बढ़ते जा रहे थे। चौबीस दिन तक भारत और पूरे संसार की आंखें उन पर लगी रहीं। सरकार ने गाँधीजी को गिरफ्तार करने का खतरा मोल नहीं लिया। आंदोलन अपनी चरम-सीमा तक पहुंचता जा रहा था। सैकड़ों-हज़ारों लोगों ने जुलूस में भाग लिया। पुरुष, स्त्री और बच्चे जगह-जगह कतारों में खड़े रहते, हार-फूल भेंट करते और यात्रा की सफलता के नारे लगाते। दुनिया के कोने-कोने से समाचार-पत्र प्रतिनिधि इस यात्रा की रिपोर्टिंग करने के लिए यात्रा के साथ-साथ चल रहे थे।

डांडी के लिए कूच, १९३०

5 अप्रैल को डांडी यात्रा समाप्त हुई। गाँधीजी और उनके कुछ चुने हुए साथी समुद्र किनारे गए और तट पर छूटा हुआ नमक बीनकर उन्होंने नमक कानून का उल्लंघन किया। यात्रा पूरी होने के साथ ही गाँधीजी ने देशवासियों को छूट दे दी कि वे अवैध रूप से नमक बनाएं। वह चाहते थे कि जनता खुलेआम नमक कानून तोड़े और पुलिस की कार्यवाही पर

अहिंसक विरोध प्रकट करे। पूरे भारत के लोग समुद्र किनारे नमक कानून तोड़ने जा पहुंचे। हर जगह बड़ा उत्साह था। बहुत कम लोग जानते थे कि नमक कैसे बनाया जाता है, लेकिन लोगों ने अपने-अपने तरीके इज़ाद कर लिए। नमक बनाना महत्त्वपूर्ण नहीं था, महत्त्वपूर्ण था उस कानून को तोड़ना जो ब्रिटिश शासन की मनमानी का प्रतीक था।

गाँधीजी और दूसरे नेताओं ने ऐसा प्रबंध कर रखा था कि अगर वे गिरफ्तार कर लिए जाएं, तो भी आंदोलन चलता रहे। नेताओं के नाम पहले से निश्चित कर लिए गए थे कि जैसे ही एक नेता गिरफ्तार होगा, दूसरा उसकी जगह लेने के लिए तैयार रहेगा।

कोई भी कदम उठाने से पहले सरकार कुछ समय प्रतीक्षा करती रही, फिर जवाबी कार्यवाही शुरू हो गई। गाँधीजी को खुला छोड़ दिया गया, लेकिन दूसरे बहुत से नेता गिरफ्तार कर लिए गए। जवाहरलाल नेहरू, महादेव देसाई और गाँधीजी के पुत्र देवदास को सबसे पहले जेल भेजा गया। नमक कानून तोड़ने वाले लोगों के साथ पुलिसवालों का व्यवहार पहले जैसा बर्बर ही था।

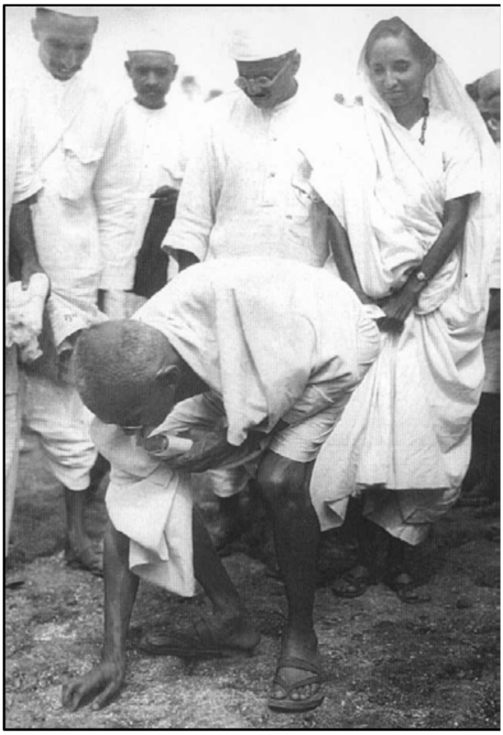

नमक कानून को भंग करते हुए

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को अवैधानिक घोषित कर दिया गया। जिन अखबारों को रोक-टोक लगाने की धमकी दी गई, उन्होंने अपना प्रकाशन बंद कर दिया। लोगों ने हड़तालें कीं, प्रदर्शन किए और वे सामूहिक रूप से गिरफ्तार हुए। जल्द ही सारी जेलों में बाढ़-सी आ गई। लोग अहिंसक ही बने रहे कि कहीं गाँधीजी आंदोलन वापस न ले लें।

फिर गाँधीजी ने वायसराय को सूचना दी कि वह धरसना के सरकारी नमक कारखाने पर धावा बोलने जा रहे हैं।

लार्ड इरविन ने कदम उठाया। मध्य रात्रि के समय दो पिस्तौलधारी अंग्रेज़ अधिकारी कई सशस्त्र सिपाहियों सहित गाँधीजी के डेरे पर पहुंचे।

उन्होंने गांधीजी को जगाया और कहा, "आप गिरफ्तार किए जाते हैं।"

गाँधीजी को गिरफ्तार करके यरवदा केंद्रीय कारागार भेज दिया गया।

धरसना नमक भंडार पर धावा बोलने के लिए गाँधीजी उपस्थित नहीं थे। भंडार कांटेवाली तारों से घिरा था और लोहे की मूठवाली लाठियों से लैस चार सौ सशस्त्र सैनिक वहां पहरा दे रहे थे। कुछ ब्रिटिश अधिकारी उनका संचालन कर रहे थे। गाँधीजी के स्वयंसेवक उस घेरे से कुछ दूर ही रुक गए। फिर चुने हुए लोगों का एक दल उन कांटेदार तारों के घेरे की तरफ बढ़ा। पुलिस अधिकारियों ने स्वयंसेवकों को चेतावनी दी कि वे लौट जाएं, लेकिन उन्होंने इसे अनसुना कर दिया।

सहसा पुलिस उनकी ओर लपकी और निहत्थे लोगों पर हमले करने लगी। एक भी स्वयंसेवक ने हाथ नहीं उठाया। वे गिरते गए। कुछ के सिर फूट गए। कुछ के कंधों पर चोटें लगीं। किसी के हाथ टूटे। तो किसी के पैर। इस दृश्य को देखने वाली भीड़ हाहाकार करती रही।

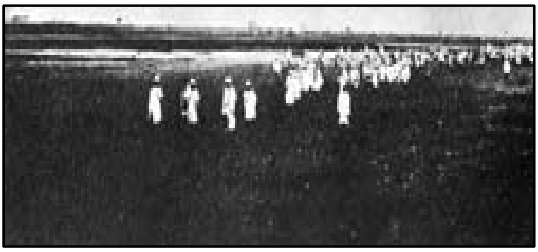

डांडी के समुद्र तट पर नमक सत्याग्रही

जब पहला दल बुरी तरह पिट चुका और स्ट्रेचर पर उठा-उठाकर उनके घायल शरीर वहां से हटा दिए गए, तो दूसरा दल उसी स्थिति का सामना करने के लिए आगे बढ़ा। यह क्रम घंटों तक चला। अंत में जब गरमी बहुत बढ़ गई, तो स्वयंसेवकों ने उस दिन के लिए कार्यवाही बंद कर दी। स्वयंसेवकों में से दो मारे गए और 320 घायल हुए।

गाँधीजी की गिरफ्तारी ने देश-विदेश में सनसनी पैदा कर दी। दुनियाभर से ब्रिटिश प्रधानमंत्री को इस आशय के पत्र भेजे गए कि गाँधीजी को रिहा कर वे भारत के साथ सुलह करने का प्रयत्न करें। जो लोग ब्रिटिश सरकार के सहयोगी थे, उन लोगों ने भी गाँधीजी को रिहा करने की मांग की।

गाँधीजी का जेल में रहना उनके बाहर रहने से अधिक खतरनाक साबित हुआ। जब वह यरवदा जेल में शांतिपूर्वक बैठे हुए थे, सारे देश में सविनय अवज्ञा आंदोलन के कारण ब्रिटिश सरकार की नाक में दम था। जेलों में जैसे बाढ़-सी आ गई थी। सरकार गंभीर संकट में पड़ गई थी और आखिरकार 1931 में उन्हें गाँधीजी, नेहरू और दूसरे नेताओं को रिहा कर देना पड़ा।

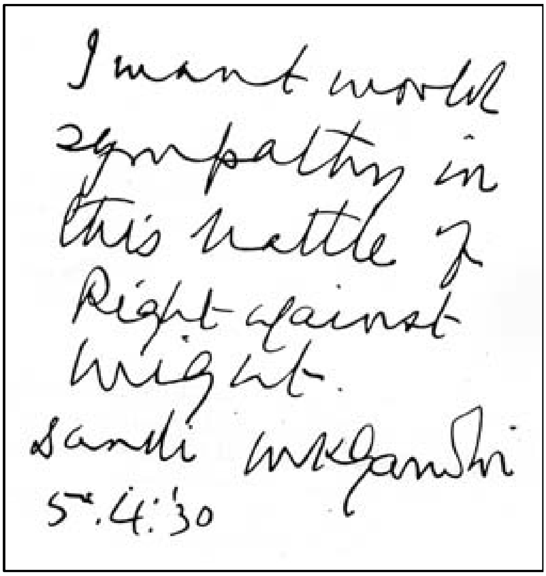

"शक्ति के विरुद्ध सत्य की इस लड़ाई में मुझे पूरे विश्व की सहानुभूति चाहिए."

डांडी, ५.४.१९३०   मोहनदास करमचंद गांधी

जैसे ही गाँधीजी जेल से बाहर आए, उन्होंने वायसराय लार्ड इरविन से भेंट करनी चाही। तत्काल भेंट की आज्ञा भी मिल गई। गाँधीजी और इरविन मिले, लेकिन दोनों ही जैसे दो अलग-अलग लोक के रहने वाले थे।

गाँधीजी दया मांगने तो गए नहीं थे। वह तो समानता के स्तर पर समझौता करना चाहते थे। कई दिनों तक बैठकों का दौर चलता रहा और अंत में एक समझौते के रूप में बात समाप्त हुई। उसका नाम 'गाँधी-इरविन पैक्ट' पड़ा इसमें दोनों पक्षों की ओर से समझौते किए गए। इरविन इस बात के लिए सहमत हुए कि वे सब राजनीतिक कैदियों को रिहा कर देंगे और गाँधीजी इस बात के लिए कि वे सविनय अवज्ञा आंदोलन

वापस ले लेंगे और गोलमेज़ सम्मेलन में कांग्रेस का एक प्रतिनिधि भेजेंगे। उन दिनों ब्रिटिश सरकार लंदन में भारत के भविष्य के बारे में विचार करने के लिए गोलमेज़ सम्मेलन आयोजित करती थी।

बंबई के विक्टोरिया डॉक्स पर मदन मोहन मालवीय, सरोजिनी नायडू और कस्तूरबाई के साथ, १९३१

'गाँधी-इरविन पैक्ट' को अहिंसक आंदोलन की विजय माना गया, जबकि कुछ कांग्रेसी इसे कोई बहुत बड़ी उपलब्धि नहीं मानते थे।

गोलमेज़ सम्मेलन के लिए गाँधीजी को कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में नामित किया गया। अगस्त 1931 में वह कुछ लोगों के साथ लंदन गए।

गाँधीजी इंग्लैंड गए थे कि भारत के लिए उचित संविधान के प्रश्न पर ब्रिटिश सरकार के साथ कोई समझौता कर सकेंगे और ब्रिटिश जनता का हृदय जीत सकेंगे। पहले उद्देश्य में तो उन्हें एक आश्वासन तक हासिल नहीं हुआ, लेकिन दूसरे में उन्हें बड़ी सफलता मिली।

गाँधीजी इंग्लैंड में 84 दिन तक रहे। अधिकांश समय वह लोगों के साथ बैठकर चर्चा करते रहे। चर्चिल ने उनसे मिलने से इंकार कर दिया। ब्रिटिश सम्राट और सम्राज्ञी ने उन्हें चाय पर बुलाया। एक पत्रकार ने गाँधीजी से पूछा कि ऐसी राजसी पार्टी में क्या उन्हें अपने कपड़ों का खयाल नहीं आया। गाँधीजी ने उत्तर दिया, "आपके सम्राट ने ही स्वयं इतने वस्त्र पहने हुए थे कि वे हम दोनों के लिए काफी थे।"

गोलमेज़ सम्मेलन में ऐसा कोई निष्कर्ष नहीं निकला जो स्वराज के काम आता। बल्कि इससे हिन्दू और मुसलमानों के बीच खाई ही बढ़ी और भारत में सांप्रदायिक तनाव और बढ़ गया।

एस.एस. राजपूताना ज़हाज के डेक पर सरोजिनी नायडू, मीरा बहन और अन्य नेताओं के साथ

लन्दन, १९३१ – दूसरी गोलमेज सम्मेलन में भाग लेते हुए गांधीजी और उनकी बाई ओर पंडित मदन मोहन मालवीय, श्रीनिवास शास्त्री और तेज बहादुर सप्रू

लंदन में सी.एफ. एंड्रूज, कुमारी म्यूरी लेस्सर, मीरा बहन, महादेव देसाई और प्यारेलाल

लंकाशायर के सूती वस्त्र मिल में महिला कर्मचारियों के साथ

21

घर लौटकर गाँधीजी ने देखा कि अंग्रेज़ों के अत्याचार तो और बढ़ गए हैं। असंख्य लोगों को गिरफ्तार कर उनकी और उनके संस्थानों की संपत्ति व जमा पूंजी छीन ली गई है, जो शासन के खिलाफ है।

सन् 1932 के प्रारंभ में नए वायसराय लार्ड विलिंग्डन से गाँधीजी ने मिलना चाहा, लेकिन वायसराय ने स्पष्ट कह दिया कि समझौते के दिन खत्म हो चुके हैं, अब कोई मुलाकात नहीं होगी। गाँधीजी ने अधिकारियों को सूचना दी कि वह फिर से सविनय अवज्ञा आंदोलन शुरू करने जा रहे हैं। वायसराय ने सोचा कि यह एक धमकी है। उन्होंने गाँधीजी को अनुयायियों के साथ गिरफ्तार करके फिर यरवदा केंद्रीय जेल में डाल दिया।

मार्च में इस संघर्ष को नई दिशा मिली। गाँधीजी ने हमेशा यह कहा कि हरिजन हिन्दू ही हैं और उनके साथ हिन्दुओं जैसा ही बर्ताव किया जाना चाहिए। उन्हीं दिनों सरकार ने यह घोषणा की कि अंग्रेज़ सरकार अछूतों के लिए पृथक मताधिकार का प्रस्ताव रख रही है। इसका आशय यह हुआ कि अछूत केवल अपनी जाति के लोगों को ही मत दे सकेंगे।

गाँधीजी हिन्दू धर्म को अखंड मानते थे। उन्होंने भांप लिया कि अंग्रेज़ हिन्दू समाज को कमज़ोर कर कौन-सी चाल चलना चाह रहे हैं।

गाँधीजी ने घोषणा की, "अछूतों के साथ अलग व्यवहार की अनुमति नहीं दी जा सकती। यह तो समाज में छुआछूत फैलाने की साजिश है। जब तक हम इससे मुक्त नहीं होंगे, तब तक हमें स्वराज नहीं मिलेगा।"

"लेकिन इस नए कानून के लिए आप क्या करेंगे?" किसी ने पूछा।

"मैं मर जाऊंगा," उन्होंने तत्काल उत्तर दिया, "लेकिन अपने जीवन को दांव पर लगाकर भी इस गलत व्यवस्था को खिलाफत करूंगा।"

गाँधीजी ने घोषणा कर दी कि यदि निर्वाचन की इस योजना में परिवर्तन नहीं किया गया, तो वह शीघ्र ही आमरण उपवास शुरू कर देंगे।

पूरा देश सकते में आ गया। गाँधीजी के निर्णय से देश के सभी नेता चकित रह गए। जवाहरलाल नेहरू तक ने यह सोचा कि एक साधारण बात के लिए वह बहुत कठोर प्रण ले रहे हैं। इस घोषणा के दिन से उपवास शुरू करने तक यरवदा जेल में दर्शकों की भीड़ उमड़ पड़ी। अधिकारियों ने गाँधीजी से मिलने के रास्ते खुले छोड़ दिए ताकि संभावित उपवास टाला जा सके, लेकिन गाँधीजी को डिगाने के सारे सुझाव असफल हो गए। दांव लग गया कि गाँधीजी उपवास करके ही छोड़ेंगे।

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने उन्हें तार भेजकर कहा, “भारत की एकता और उसकी सामाजिक एकरूपता के लिए अमूल्य जीवन उत्सर्ग कर देना ही उचित है। शोक में डूबे हुए हमारे हृदय आपकी इस आलौकिक तपस्या का आदर और स्नेह सहित अनुकरण करेंगे।”

20 सितंबर 1932 को गाँधीजी ने उपवास शुरू कर दिया। पहले दिन पूरे देश में प्रार्थनाएं की गईं और उपवास रखे गए। अछूतों के लिए कई मंदिर खोल दिए गए | देशभर में अछूतों के उद्धार के लिए सभाएं की गईं।

जेल के बाहर राजनीतिक सरगर्मी शुरू हो गई। हिन्दुओं और अछूतों के नेता इस बात पर चर्चा करते रहे कि कौन-सा ऐसा समझौता हो जिससे गाँधीजी को संतोष मिल सके। कई सुझाव दिए गए लेकिन सब अस्वीकृत हो गए। तभी हरिजन नेता डा. बी.आर. अंबेडकर गाँधीजी से मिले और उन्होंने गाँधीजी को विश्वास दिलाया कि वह ऐसा कोई हल ज़रूर ढूंढेंगे, जिससे उनके जीवन की रक्षा की जा सके।

उपवास का तीसरा दिन था। गाँधीजी की बिगड़ती हुई दशा से उनके मित्रों को चिंता होने लगी। वह बहुत कमज़ोर हो गए थे। स्नानघर तक भी उन्हें स्ट्रेचर पर ले जाना पड़ता था। उनकी आवाज़ क्षीण हो चुकी थी। रक्तचाप भी बढ़ता जा रहा था। ब्रिटिश अधिकारियों में आतंक छा गया।

कस्तूरबाई के अलावा उनके कई मित्रों को उनके साथ रहने की अनुमति दे दी गई। जनता हताश हो गई थी। गाँधीजी की मृत्यु हो सकती थी और फिर उनका कोई नेता नहीं रहेगा। दूसरे नेता भी हार गए क्योंकि वे ऐसा कोई हल नहीं ढूंढ पाए जिससे सहमत होकर गाँधीजी उपवास तोड़ देते।

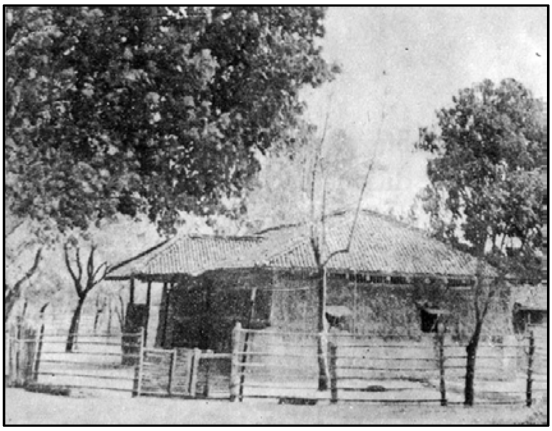
सेवाग्राम में गांधीजी की कुटिया

उपवास के पांचवें दिन हिन्दू और अछूत नेताओं ने आखिरकार सहमति का रास्ता ढूंढ ही लिया। एक समझौते पर हस्ताक्षर हो गए जिसके अनुसार पृथक मताधिकार समाप्त किया जा सके। लेकिन गाँधीजी तब तक उसे कैसे मान सकते थे जब तक कि ब्रिटिश सरकार उसका अनुमोदन न कर दे।

समाचार मिले कि ब्रिटिश सरकार ने उस समझौते को स्वीकार कर लिया है। गाँधीजी ने तब भी उपवास नहीं तोड़ा। जब तक कि उस स्वीकृति के कागज़ को वह स्वयं न देख लें, तब तक वह मान नहीं सकते थे।

जब गाँधीजी उस स्वीकृति-पत्र की प्रतीक्षा कर रहे थे, तब टैगोर उनसे मिलने आए। गाँधीजी की ऐसी कमज़ोर दशा देखकर कवि-हृदय विचलित हो उठा और गाँधीजी के वक्ष पर सिर रखकर वह रो दिए। ब्रिटिश सरकार की स्वीकृति आ गई। गाँधीजी सहमत हो गए और उनका वह लंबा और कठोर उपवास समाप्त हो गया।

सन् 1933 में गाँधीजी जेल से छूटे। उसके कुछ समय बाद ही उन्होंने सामूहिक सविनय अवज्ञा आंदोलन स्थगित कर दिया। सरकार की पाशविक नीतियों के विरुद्ध उन्होंने व्यक्तिगत रूप से सत्याग्रह करने की छूट दे दी।

अगले सात वर्षों तक गाँधीजी जनता की सामाजिक और आध्यात्मिक उन्नति के लिए कठिन परिश्रम करते रहे। जवाहरलाल नेहरू और बहुत से अन्य नेता गाँधीजी की नीतियों से सहमत नहीं थे।

नेहरू ने कहा, “लेकिन मैं किसी ‘जादूगर' को कोई सुझाव देने का दुस्साहस कैसे कर सकता हूं?”

और उस ‘जादूगर' के प्रति नेहरू की भक्ति अटल बनी रही।

नमक सत्याग्रह के दिनों में सरकार ने साबरमती आश्रम छीन लिया था। इसलिए गाँधीजी ने वर्धा (अब महाराष्ट्र में) के नज़दीक सेवाग्राम में एक छोटा-सा विश्रामग्रह बना लिया। अब यही उनका मुख्य कार्यालय था।

सरकार ने जो नए सुधार लागू किए, उन्हें जनता ने पसंद नहीं किया, लेकिन कांग्रेसियों सहित बहुत से लोग उन पर अमल करना चाहते थे जिससे स्वराज हासिल करने की दिशा में कोई संभावना ढूंढ़ी जा सके।

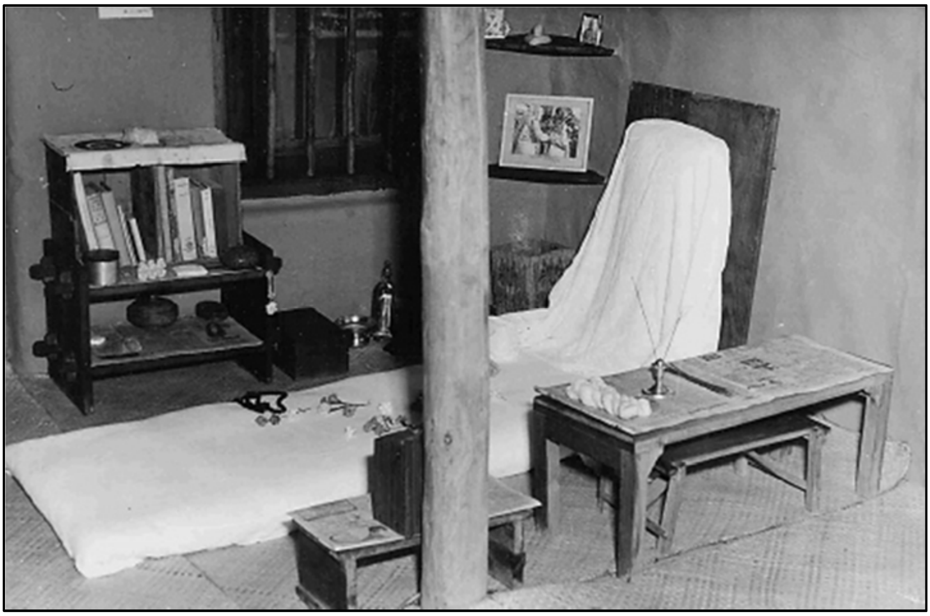

बापू कुटीर, सेवाग्राम में गांधीजी का कक्ष

22

सन् 1939 में द्वितीय विश्व युद्ध छिड़ गया। इंग्लैंड और फ्रांस ने नाज़ी जर्मनी के विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया था। भारतीय नेताओं से परामर्श किए बिना ही ब्रिटेन ने घोषणा कर दी कि भारत युद्ध में मित्र देशों के साथ है।

गाँधीजी की सहानुभूति ब्रिटेन के साथ थी, लेकिन उनका विश्वास था कि हिंसा मात्र बुरी बला है। इसी कारण से युद्ध के लिए वह कुछ भी करने में असमर्थ थे। फिर भी उन्होंने इंग्लैंड को नैतिक समर्थन दिया।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ब्रिटेन की सहायता करना चाहती थी और मित्र देशों की ओर से लड़ना भी चाहती थी, लेकिन एक स्वतंत्र राष्ट्र की हैसियत से। परंतु भारत को स्वतंत्रता दे देना चर्चिल और उसकी हुकूमत को हास्यास्पद लगा। वे नहीं चाहते थे कि उनकी किसी असावधानी के कारण भारत की सत्ता हाथ से निकल जाए। ब्रिटेन ने कांग्रेस के प्रस्तावित सहयोग को अस्वीकार कर दिया।

इसके विरोध स्वरूप कांग्रेस के सभी प्रांतीय मंत्रिमंडलों ने इस्तीफे दे दिए। सरकार ने प्रशासन का काम-काज अपने हाथों में ले लिया और काम इस तरह से किया जाने लगा कि उससे उन्हें युद्ध में सहायता मिलती रहे। गाँधीजी से संयम का जो मंत्र नेताओं ने सीखा था, उसके बल पर उन्होंने सरकार के इस व्यवहार के प्रति किसी तरह की प्रतिक्रिया जाहिर नहीं की।

परंतु यूरोप की घटनाओं का भारत पर प्रभाव पड़ रहा था। कांग्रेस कार्यसमिति ने युद्ध के प्रति गाँधीजी के दृष्टिकोण को पूरी तरह स्वीकार करने में अपने आपको असमर्थ पाया। वे उनके इस विचार से एकदम असहमत थे कि भारत की सुरक्षा सशस्त्र शक्ति पर निर्भर न रहे।

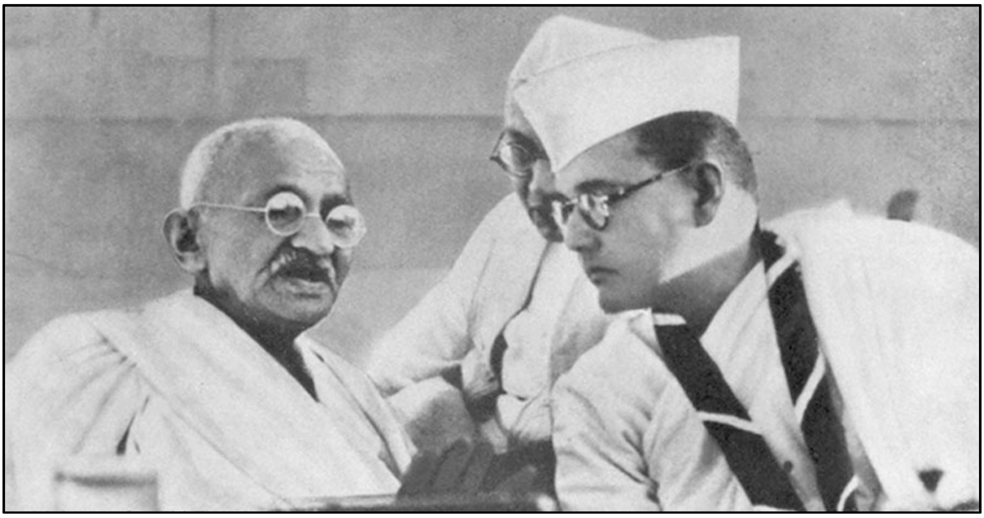

हरिपुरा, गुजरात में कांग्रेस अध्यक्ष सुभाष चंद्र बोस के साथ, १९३८

सेवाग्राम में गाँधीजी की कुटिया में नेताओं ने कई बैठकें कीं और अपनी इच्छा जताई कि अब कोई कदम उठाया जाना चाहिए। अंत में एक प्रस्ताव सामने रखा गया कि भारत की सुरक्षा के लिए सभी प्रांतीय सरकारें ब्रिटिश सत्ता के साथ हो जाएं, लेकिन सरकार ने इसे भी नामंजूर कर दिया।

सितंबर 1940 में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की एक बैठक बंबई में हुई। इंग्लैंड ने भारत की आशाओं के सरासर विपरीत कार्य किया था। इसके विरोध स्वरूप यह तय किया गया कि सत्ता के खिलाफ व्यक्तिगत रूप से सविनय अवज्ञा आंदोलन की शुरुआत की जानी चाहिए। ब्रिटिश साम्राज्यवाद के प्रति अपना विरोध प्रदर्शित करने के लिए जगह-जगह सभाएं आयोजित करने का निर्णय भी लिया गया। उन दिनों ऐसी सभाओं पर कड़ी रोक लगी हुई थी।

व्यक्तिगत सत्याग्रह शुरू करने वालों में विनोबा भावे सर्वप्रथम थे। उन्हें उनके साथियों सहित हिरासत में ले लिया गया। नेहरू भी गिरफ्तार हो गए। कुछेक महीनों में तीस हज़ार से ऊपर कांग्रेसी जेल में बंद कर दिए गए। केवल गाँधीजी ही गिरफ्तार नहीं किए गए थे। उन्होंने अपना सारा समय सत्य और अहिंसा के प्रचार कार्य में लगा दिया था।

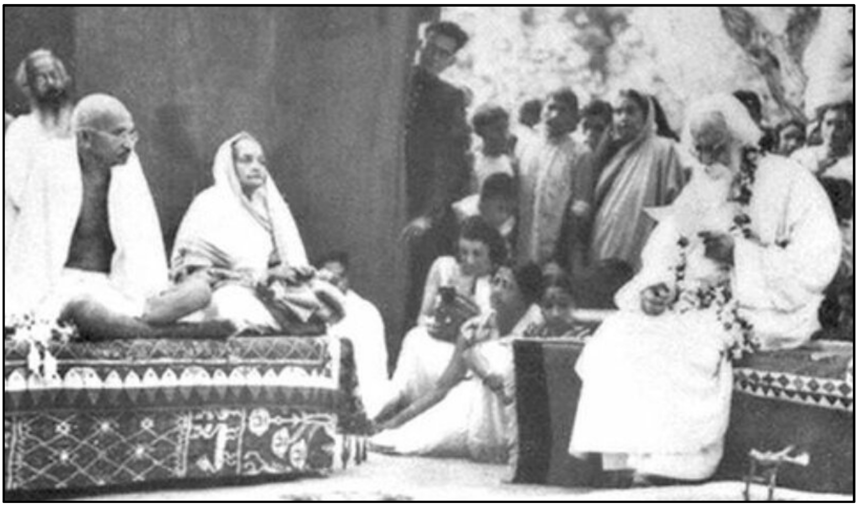

शांति निकेतन में टैगोर के साथ, १९४०

दिसंबर 1941 में सरकार ने सभी सत्याग्रहियों को रिहा कर दिया।

फिर 1942 में जब जापान प्रशांत महासागर को पार करता हुआ मलाया और बर्मा तक आ गया, तो ब्रिटिश सरकार ने भारत के साथ समझौता कर लेने की बात पर विचार किया। उन्हें डर था कि कहीं जापान भारत पर भी आक्रमण न कर दे।

इसी भय से गाँधीजी ने भी सोचा कि उनकी शांतिवादी नीति कहीं भारत के भविष्य के आड़े न आ जाए। तब उन्होंने कामचलाऊ सरकार बनाने का प्रस्ताव रखा जिससे भारत की पूरी शक्ति हमलावर से युद्ध करने में सरकार के हाथ में रह सके। लेकिन उनका सुझाव अस्वीकृत कर दिया गया।

मार्च 1942 में चर्चिल ने यह घोषणा कर दी कि युद्ध मंत्रिमंडल ने भारत के लिए एक योजना पर स्वीकृति दे दी है। इसके लिए सर स्टेफर्ड क्रिप्स भारत जाकर यह संभावना खोजेंगे कि वहां के नेता इस योजना को स्वीकार करते हैं या नहीं और क्या वे जापान के खिलाफ भारत की रक्षा के लिए तन-मन से समर्पित होने को तैयार हैं।

सर स्टेफर्ड क्रिप्स 22 मार्च को दिल्ली आए। वह गाँधीजी, नेहरू, आज़ाद, जिन्ना और सभी प्रसिद्ध नेताओं से मिले। उस समय तक जितनी आज़ादी की बात कही गई थी, क्रिप्स ने

उससे अधिक के लिए आश्वासन दिया। उन्होंने यह भी कहा कि भारत चाहे तो युद्ध के बाद उसे पूर्ण स्वतंत्रता भी दी जा सकती है। यही प्रस्ताव यदि एक साल पहले आता तो नेतागण इसे स्वीकार कर लेते, लेकिन उस समय सबने आपसी सहमति से इसे अस्वीकृत कर दिया।

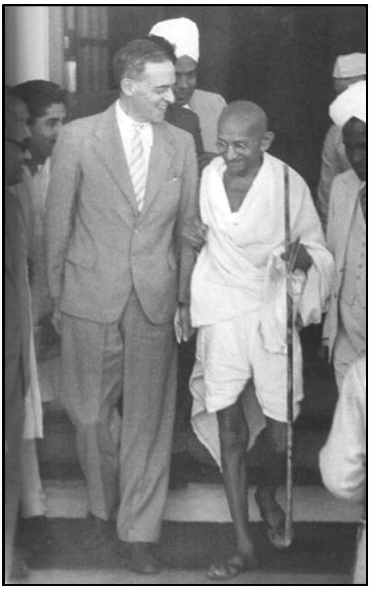

सर स्टेफर्ड क्रिप्स के साथ, १९४२

कांग्रेसी नेता ऐसे किसी समझौते के लिए तैयार नहीं थे जो कोरे आश्वासनों पर आधारित हो। सत्ता देने के मामले में ब्रिटिश सरकार भारतीय जनता पर पूरी तरह विश्वास नहीं करती थी और इसी कारण भारतीय नेताओं ने भी उस पर भरोसा नहीं किया कि वह युद्ध के बाद उन्हें सत्ता सौंप देगी।

23

अगस्त 1942 में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक बंबई में हुई। उसकी अध्यक्षता मौलाना अबुल कलाम आज़ाद ने की। बैठक में फिर से कामचलाऊ सरकार बनाने की मांग दुहराई गई।

"देशवासियों को अपनी इच्छा प्रकट करने से अब हम अधिक नहीं रोक सकते," गाँधीजी ने कहा, "न ही हम लोग साम्राज्यवादी नीतियों के सामने झुक सकते हैं। समय आ गया है कि अंग्रेज़ देश छोड़कर चले जाएं। उनके सरकारी नौकर, सेना और शासनाधिकारी, सभी अब भारत छोड़ दें।"

'भारत छोड़ो' का प्रस्ताव तैयार किया गया और ब्रिटिश सरकार के समक्ष पेश करने के लिए इसे पास भी कर दिया गया। प्रस्ताव रखने वाले थे जवाहरलाल नेहरू और इसका अनुमोदन किया था सरदार पटेल ने। बड़े पैमाने पर सामूहिक संघर्ष शुरू करने की घोषणा कर दी गई थी।

बैठक की कार्यवाही को समाप्त करते हुए गाँधीजी ने कहा, "मैंने कांग्रेस से प्रतिज्ञा ली है और कांग्रेस 'करने और मरने' के लिए प्रतिज्ञाबद्ध है।"

सरकार ने जन विद्रोह के शुरू होने की प्रतीक्षा नहीं की। रातोंरात गाँधीजी और देश के अन्य नेताओं को भी गिरफ्तार कर लिया गया। गाँधीजी को पूना के आगाखां महल में भेज दिया गया। महादेव देसाई, कस्तूरबाई, श्रीमती नायडू और मीराबेन को भी बंद कर दिया गया। लेकिन नेताओं के जेल चले जाने पर देशवासी चुप नहीं हो पाए। 'करो या मरो' का नारा बुलंद हो चुका था। हर जगह प्रदर्शन किए जा रहे थे। पूरे देश में हिंसक आंदोलन फूट चुका था। लोगों ने सरकारी इमारतें जला दीं। जो कुछ भी ब्रिटिश के क्रूर साम्राज्यवाद का प्रतीक दिखाई देता, उसे ही नष्ट कर दिया जाता था।

आगाखां महल में नज़रबंदी के शीघ्र बाद ही गाँधीजी को एक दुखद विछोह सहना पड़ा। उनके विश्वासपात्र सचिव महादेव देसाई की हृदय गति रुक जाने से मृत्यु हो गई। गाँधीजी

ने कहा, “महादेव ने ‘करो या मरो' मंत्र को जीवनभर निभाया। उसका बलिदान हमें स्वतंत्रता के नज़दीक लाएगा।”

सारे देश में हड़तालें हो रही थीं और उपद्रव फैल गए थे। वायसराय लिनलिथगो ने इसका सारा दोष गाँधीजी के सिर मढ़ दिया। उन्होंने कहा कि गाँधीजी ने हिंसा को निमंत्रण दिया है। लार्ड लिनलिथगो को लिखे अपने कई पत्रों में गाँधीजी ने उन्हें समझाने की कोशिश की, कि उन पर से यह आरोप हटा लिया जाए।

असफल होकर गाँधीजी ने अपने खिलाफ लगाए गए गलत आरोपों के लिए 'सबसे बड़ी अदालत में अपील करने के लिए’ उपवास करने का निश्चय किया। फरवरी 1943 में गाँधीजी ने 21 दिन का उपवास किया। वह बहुत बड़ी परीक्षा थी, लेकिन वह बच गए।

कस्तूरबा ने सेवा-सुश्रूषा करके उन्हें फिर से स्वस्थ कर दिया, लेकिन उनका अपना स्वास्थ्य ही गिरता जा रहा था। वह हृदय रोग के दो दौरे सह चुकी थीं। गाँधीजी ने उन्हें बचाने की सभी कोशिशें कीं, लेकिन कस्तूरबा की हालत खराब ही होती चली गई। आखिर एक दिन गाँधीजी की गोद में कस्तूरबा ने सदा के लिए आंखें मूंद लीं।

कुछ सप्ताह बाद ही गाँधीजी को मलेरिया हो गया। वह गंभीर रूप से बीमार हो गए। भारतीय जनता ने कहा कि उन्हें तत्काल रिहा कर दिया जाए। अधिकारियों ने यह सोचकर कि वह मृत्यु-शैया पर हैं, उन्हें और उनके साथियों को रिहा कर दिया। गाँधीजी धीरे-धीरे स्वस्थ हो गए।

भारतीय स्वतंत्रता की मांग का सवाल अब पूरी दुनिया का सवाल बन चुका था। भारत की अपनी मांग तो थी ही, अमरीका और दूसरे देशों ने भी ब्रिटेन पर दबाव डाला कि भारत को स्वतंत्रता दे दी जाए, लेकिन चर्चिल किसी के कहने पर झुके नहीं। भारत ब्रिटिश लोगों की संपन्नता के लिए सोने की चिड़िया था। चर्चिल किसी भी शर्त पर भारत छोड़ने को तैयार नहीं थे। वह ब्रिटेन को इस संपन्नता से कैसे वंचित कर सकते थे?

जर्मनी के आत्मसमर्पण के बाद मई 1945 में ब्रिटेन में सत्ता मज़दूर पार्टी के हाथ आ गई। एटली प्रधानमंत्री बने। जापान के पराजित हो जाने के कुछ महीने बाद ब्रिटिश सरकार ने घोषणा की कि जैसे ही भारत के घरेलू मामले सुलझ जाते हैं, वैसे ही उसको स्वराज्य देने की आशा की जा सकती है।

अहिंसा के बूते पर यह भारत की जीत थी। शांति से परास्त होकर ब्रिटेन भारत को अब अधिक समय तक अपने अधिकार में नहीं रख सकता था।

ब्रिटेन बगैर किसी कटुता के मित्रतापूर्ण वातावरण में योजना बनाकर भारत से हट जाने के लिए सहमत हो गया।

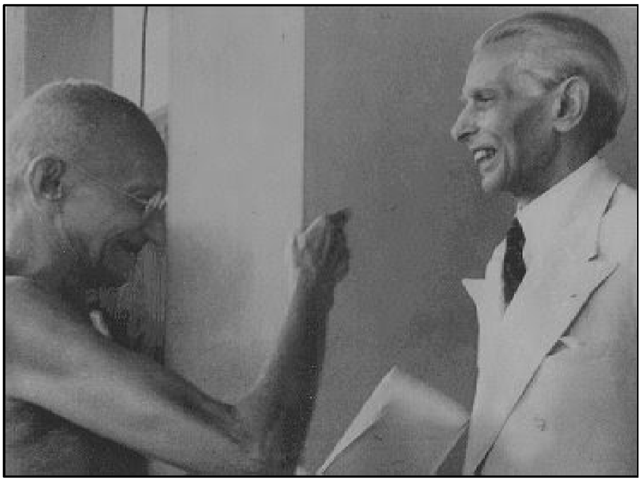

मोहम्मद अली जिन्ना के साथ, १९४४

गाँधीजी हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए जीवनभर कार्य करते रहे, लेकिन इसमें उन्हें सफलता नहीं मिली। कांग्रेस में राष्ट्रीय विचारधारा के बहुत से मुसलमान थे। मुस्लिम लीग के नेता धीरे-धीरे दूर ही दूर होते चले गए। गाँधीजी निराश होने वाले नहीं थे। वह समझौते की कोशिश में लगे रहे। उधर मुस्लिम लीग के नेता जिन्ना एकता के दुश्मन निकले। उन्होंने देश की आज़ादी से पहले एक अलग मुस्लिम देश बनाने की मांग रख दी।

वायसराय ने सभी भारतीय नेताओं को शिमला में बुलाया। उन्होंने हल ढूंढ़ने की कोशिश की ताकि हिन्दू-मुस्लिम एकता बनी रह सके, लेकिन जिन्ना किसी भी बात को मानने वाले नहीं थे। उन्होंने इसी बात पर ज़ोर दिया कि पृथक देश बनाया जाए और उसका नाम हो पाकिस्तान।

इसके लिए ब्रिटेन ने चुनाव की घोषणा की और चुनावों में कांग्रेस ने अधिकांश गैर-मुसलमान सीटें और मुस्लिम लीग ने मुस्लिम सीटें जीत लीं और गतिरोध बना रहा।

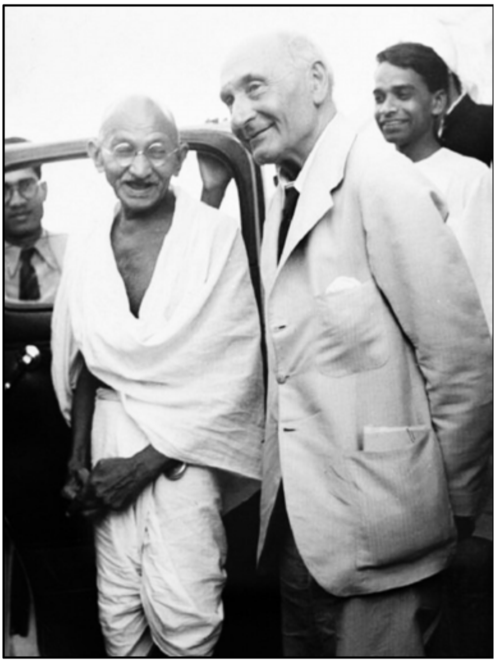

लार्ड पैथक लोरेंस के साथ, १९४६

जिन्ना ने कहा, "हम भारत की समस्या को दस मिनट में सुलझा सकते हैं, अगर मिस्टर गाँधी पाकिस्तान बनाने की बात मान जाएं।"

गाँधीजी ने व्यथित होकर कहा, "मेरे दो टुकड़े कर लो, लेकिन भारत के टुकड़े मत करो।"

लेकिन उनकी कौन सुनता! फरवरी 1946 में ब्रिटिश शासन ने मंत्रिमंडल की ओर से एक मिशन भारत भेजा। इसमें लार्ड पैथिक लॉरेंस, सर स्टेफर्ड क्रिप्स और श्री ए.वी. एलेग्ज़ेंडर शामिल थे। मिशन भारत की स्थिति का अध्ययन करके आवश्यक सुझाव देने आया था। आखिरकार मंत्रिमंडलीय इस मिशन ने ब्रिटिश सरकार को भारत छोड़ देने की सलाह दी। उस समय अधिकारियों के मन में अखंड भारत की ही कल्पना थी।

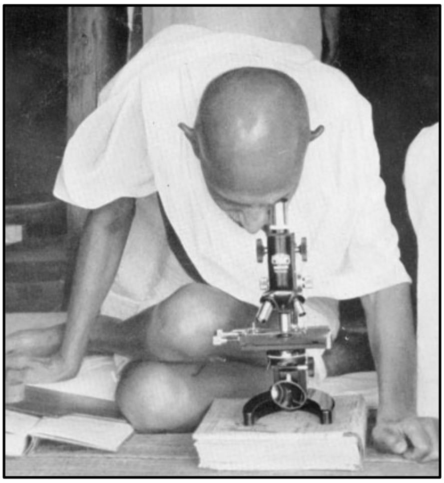

सूक्ष्मदर्शी द्वारा कुष्ठ रोगाणुओं का अध्ययन करते हुए, १९३९

24

24 अगस्त को वायसराय ने अपनी कार्यकारिणी समिति की जगह अंतरिम राष्ट्रीय सरकार बनाने की घोषणा कर दी।

पंडित जवाहरलाल नेहरू अंतरिम सरकार के उपाध्यक्ष थे।

मुस्लिम लीग ने उसमें सम्मिलित होने से इंकार कर दिया क्योंकि उसे सभी मुस्लिम सदस्यों को नामित करने का अधिकार नहीं दिया गया था।

अंतरिम सरकार बन जाने के बाद गाँधीजी चाहते थे कि वह अपने आश्रम सेवाग्राम चले जाएं, लेकिन कांग्रेसी नेताओं ने उनसे आग्रह किया कि वह कुछ दिन और दिल्ली रहें क्योंकि उन्हें उनके सुझावों की ज़रूरत है। गाँधीजी दिल्ली रुक गए।

फिर मुस्लिम लीग ने यह तय किया कि वह अंतरिम सरकार में सम्मिलित होगी और इसकी घोषणा 15 अक्तूबर 1946 को कर दी गई। गाँधीजी को फिर लगा कि अब वह सेवाग्राम लौट सकते हैं।

वह जब दिल्ली छोड़ने ही वाले थे कि बंगाल से दंगों के समाचार आए | कलकत्ता और पूर्वी बंगाल के मुस्लिम बाहुल्य ज़िले नोआखाली में मुसलमानों ने सांप्रदायिक दंगे शुरू कर दिए। वहां हत्या, आगज़नी, लूटपाट तथा जबरन धर्म-परिवर्तन, विवाह और अपहरण की भरमार हो गई।

गाँधीजी का मन विचलित हो उठा। सेवाग्राम लौटने का इरादा छोड़कर अब वह शांति स्थापना के लिए नोआखाली क्षेत्र के गांवों में निकल पड़े।

बिहार और पंजाब में भी सांप्रदायिकता भड़क उठी। हज़ारों लोग मारे गए और हज़ारों घायल हुए। इन घटनाओं से गाँधीजी बहुत हताश हो गए। उन्होंने शांति स्थापित करने और लोगों को विश्वास दिलाने की कोशिश की।

भाईचारे का संदेश लेकर वह गांव-गांव और घर-घर घूमते रहे। वह जहां-जहां जाते, वहां ऊपर से तो शांति दिखाई देती, लेकिन देश की आम हालत खराब होती चली गई। ये दंगे शहरों और कस्बों के बाद गांवों में फैलने लगे। बिहार में मुसलमान पीड़ित थे। गाँधीजी ने वहां जाकर लोगों को साहस दिलाया। हालात इतने खराब हो गए थे कि कांग्रेसी नेताओं के सामने जिन्ना की सलाह के अनुसार देश के विभाजन को स्वीकार कर लेने के अलावा और कोई रास्ता बाकी नहीं रह गया था। न चाहते हुए उन्होंने पाकिस्तान के निर्माण की बात मान ली।

नोआखली के दंगा प्रभावित गावों की ओर जाते हुए, १९४६

नेहरू अपना निर्णय बताने के लिए गाँधीजी से मिले।

गाँधीजी ने पूछा, “क्या कोई भी रास्ता नहीं निकल सकता? क्या अखंड भारत की कोई आशा नहीं रह गई?”

नेहरू उदास थे। उन्होंने उत्तर दिया, “बापू एकता असंभव है। अपनी ही सीमाओं के भीतर एक अलग राष्ट्र की कल्पना भयावह है, लेकिन उसे स्वीकार करना ही होगा। नहीं तो ये विनाशकारी दंगे समाप्त नहीं होंगे।"

निराश होकर गाँधीजी ने सिर झुका लिया।

3 जून 1947 को ब्रिटिश प्रधानमंत्री एटली ने भारत के विभाजन की घोषणा कर दी। कांग्रेस और लीग ने भी बंटवारे को स्वीकार कर लिया।

गाँधीजी के लिए यह सब दर्दनाक था। अगाध दुख के साथ वह बोले, “अब पूरे भारत को पाकिस्तान के जन्म को स्नेहपूर्वक त्याग के रूप में स्वीकार कर लेना चाहिए। हमारे पास

कोई विकल्प नहीं रह गया था। अब हिन्दू लोग भाईचारे के साथ समझौते के रास्ते पर चलें।"

भारत में ब्रिटिश सरकार के अंतिम वायसराय लार्ड माउंटबेटन स्वतंत्र भारत और पाकिस्तान के निर्माण में अब देर नहीं करना चाहते थे। उन्होंने अपने भारत छोड़ने की अवधि में भी कमी कर दी। भारत को आज़ाद घोषित करने की तारीख 15 अगस्त 1947 तय कर दी गई।

लार्ड और लेडी माउन्टबेटन के साथ

आज़ादी की लड़ाई समाप्त होने के साथ ही सैकड़ों वर्षों से चली आ रही दासता के दिन पूरे हो गए। एक नए राष्ट्र का जन्म हुआ, हालांकि वह दो टुकड़ों में बंटा हुआ था।

माउंटबेटन ने गाँधीजी की प्रशंसा करते हुए कहा, "अहिंसा के प्रतीक वे स्वतंत्र भारत के निर्माता हैं।"

गाँधीजी ने विभाजन के लिए कभी भी अपनी सहमति नहीं दी थी, लेकिन जब विभाजन हो गया तो उन्होंने उसे स्वीकार कर लिया और हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए वह हर संभव प्रयत्न करने लग गए। फिर भी हिन्दू-मुसलमानों में तनाव बढ़ता ही गया।

विभाजन के परिणामस्वरूप सात लाख से अधिक हिन्दू, सिख और पाकिस्तान के हिस्सों में आए हिन्दू उस हिस्से में रहने वाले मुसलमानों के भय से अपने घर-बार छोड़कर भागे। उसी संख्या में भारत में बसे मुसलमान पाकिस्तान को पलायन कर गए। इस सामूहिक देश-परिवर्तन का इतिहास में कोई सानी नहीं। इसने अनंत विपत्तियों को जन्म दिया। एक

देश से दूसरे देश जाने के रास्ते में करीब पंद्रह लाख लोगों को भूख, बीमारी और कत्लेआम को झेलना पड़ा।

२९ जनवरी १९४८: प्रार्थना सभा में जाते हुए

गाँधीजी पंजाब जाते हुए दिल्ली रुके कि यहां के दंगों और उपद्रवों की सुलगती आग को वह बुझा सकें। यहां वह दिल्ली के हिन्दुओं का मुसलमानों के साथ अमानवीय व्यवहार देखकर चकित रह गए।

मुसलमानों के प्रति क्षमा और सहिष्णुता के उपदेशों ने बहुतेरे अतिवादी कट्टर हिन्दुओं की आंखों में गाँधीजी को गद्दार बना दिया। धर्मोंमाद में किए जा रहे उपद्रव को देखकर गाँधीजी ने अपने शांति प्रयास दुगुने कर दिए। देशभर में हो रहे प्रमुख उपद्रव तो शांत हो गए, लेकिन इसके बावजूद छुट-पुट दंगे तब भी होते रहे।

गाँधीजी ने प्रायश्चित स्वरूप उपवास करने का निर्णय लिया कि उससे धर्मांध हिन्दू लोगों के रुख में अंतर आएगा। 13 जनवरी 1948 को उपवास शुरू हुआ। इस समाचार से सारे देश पर उदासी के बादल छा गए। लोगों को लग रहा था कि वह उपवास का दूसरा दिन भी नहीं सह सकेंगे। अठहत्तर वर्ष के वयोवृद्ध गाँधी ने देश को विनाश से बचाने के लिए जब उपवास शुरू किया तो पूरे विश्व की आंखें उन पर लगी हुई थीं।

18 जनवरी को एक शांति सभा बुलाई गई। इसमें सभी संप्रदायों के लोग शामिल थे। उन लोगों ने मुद्दे पर चर्चा की और अल्पसंख्यक मुसलमानों के प्रति आस्था और उनकी संपत्ति, जीवन की रक्षा और आपसी एकता के लिए प्रतिज्ञा लेते हुए एक समझौते पर हस्ताक्षर किए। गाँधीजी को इस प्रतिज्ञा की सूचना दी गई। जिससे संतुष्ट होकर उन्होंने उपवास तोड़ दिया। गाँधीजी बिड़ला हाउस के मैदान में रोज़ प्रार्थना सभा आयोजित करते थे|

20 जनवरी को उनकी सभा में किसी ने एक बम फेंक दिया, लेकिन गाँधीजी की प्रार्थना सभा ऐसे चलती रही जैसे कुछ हुआ ही न हो। निशाना चूक गया था। किसी ने कहा, "बापू, आपके पास कल बम फटा था।"

"क्या सचमुच?" गाँधीजी ने कहा, "शायद किसी बेचारे पागल ने फेंका होगा, लेकिन उस ओर किसी को ध्यान नहीं देना चाहिए।"

30 जनवरी को दोपहर की नींद के बाद गाँधीजी साढ़े तीन बजे जगे। दिनभर मिलने वाले आते रहते थे। सरदार पटेल 4 बजे उनसे मिलकर जा चुके थे। नेहरू और आज़ाद शाम की प्रार्थना के बाद आने वाले थे।

गाँधीजी पांच बजे अपने कमरे से निकले और प्रार्थना सभा के लिए मैदान की ओर जाने लगे। वह अपनी पोती मनु और पोतबहू आभा के साथ खुली पगडंडी पर से गुज़र रहे थे। जैसे ही उन्होंने कदम बढ़ाया, एक युवक उनके सामने इस तरह आया जैसे आशीर्वाद लेने आ रहा हो। गाँधीजी के ठीक सामने खड़े होकर उसने एक के बाद एक तीन गोलियां दाग दीं और वे सारी गोलियां गाँधीजी को लगीं।

गाँधीजी गिर पड़े। उनके मुंह से निकले अंतिम शब्द थे, "हे राम, हे राम!"

उनकी मृत्यु हो चुकी थी। उनकी इस जघन्य हत्या के समाचार से सारा संसार अवाक् रह गया।

नेहरूजी ने उनके निधन का समाचार सारे देश को दिया।

भावावेग से उनका गला रुंध गया था :

"मित्रो और साथियो, हमारे बीच से प्रकाश अस्त हो गया है और हर जगह अब अंधेरा-ही-अंधेरा है। मैं नहीं जानता कि आपको क्या कहूं और किस तरह से कहूं। हमारे प्रिय नेता, हमारे राष्ट्रपिता, जिन्हें हम प्यार से बापू कहते थे, नहीं रहे। शायद मैं गलत कह रहा हूं। परंतु हम अब उन्हें उस रूप में नहीं देख सकेंगे जिस रूप में वर्षों से देखते आए हैं, मैंने

कहा प्रकाश अस्त हो गया, मेरा यह कहना भी गलत है क्योंकि जो प्रकाश इस देश में जन्मा था, वह साधारण प्रकाश नहीं था। जिस प्रकाश ने इस देश को अनेक वर्षों तक दीप्तिमान किया, वही इस देश को भविष्य में अनंत वर्षों तक प्रकाशित करता रहेगा। हज़ारों वर्षों बाद भी वह प्रकाश इस देश में प्रज्ज्वलित रहेगा, सारा संसार उसे देख सकेगा और वह अनेक हृदयों को शांति प्रदान करता रहेगा...।"

अंतिम यात्रा: ३१ जनवरी १९४८